अक्षरातीत श्री कृष्ण परमात्मने नमः

-(श्री कृष्ण प्रणामी धर्म- श्रीमन्निजानन्द संप्रदाय)-

पञ्चरोशनी

-(श्री कुलजम स्वरुप साहेब के)-

-(सरल-स्वभाषार्थ)-

में -

प्रकाशक :-

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट
श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के संस्थापक
परमपूज्य "वाणी आचार्य"
श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (प.) मुंबई - ४०० ०९२.

भाष्यकार -
-दीनदयाल

आग्रह

तुम स्याने मेरे साथजी, जिन रहो विषे रस लाग ।
पाउं पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग ॥

-(प्रकाश हिन्दी, प्र. १७/चौ.२१)।

अर्थः- हे मेरे धाम के सुमन सुंदरसाथजी ! आप सभी ही अत्यंतै बुद्धिमान, होशियार एवं समझदार हो । सुनो, देखो और विचार करो ! पंचविषय के इन्द्रियजन्य स्वादमें मात्र लगे मत रहो । मैं इन्द्रावती आप सबके पाँव लगकर-चरण पकड़कर कहती हूँ कि अज्ञानरूपी निद्रा से ज्ञान लेकर जाग जाओ ! उठो !! खड़े हो जाओ !!! क्योंकि अब अपना घर जाने का समय आ गया है ।

-प्रणाम

❋ महामति श्री प्राणनाथजी ❋

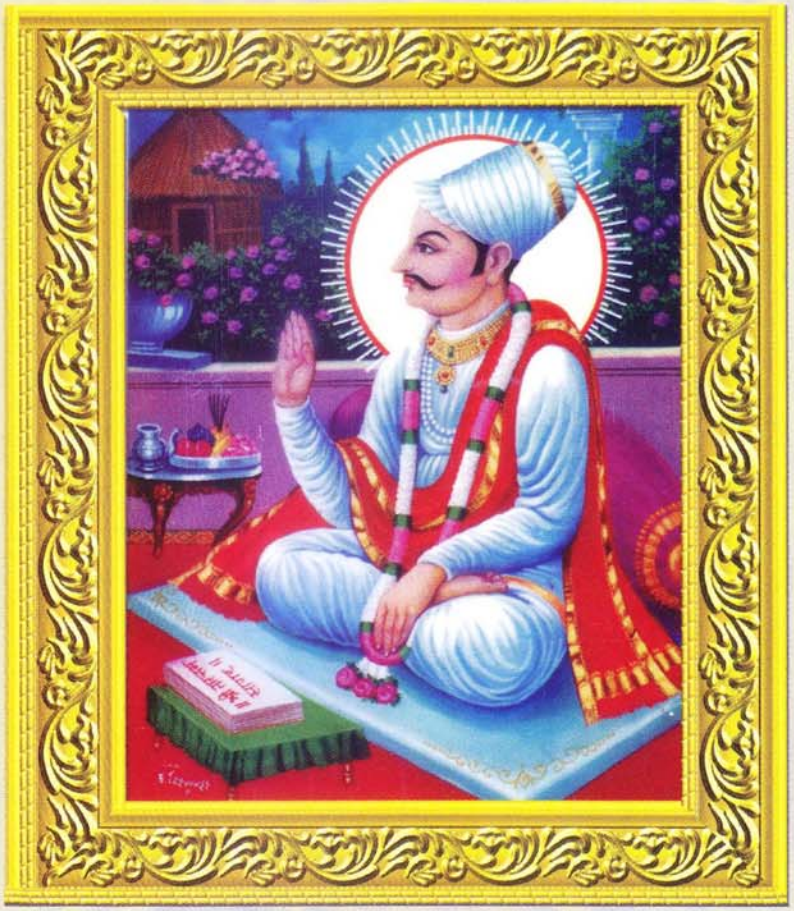

श्री धनीजीको जोश आतम दुलहिन,
नूर हुकम बुध मूल वतन ।
ए पांचों मिल भई महामत,
वेद कतेबों पोहोंची सरत ।।

- (तारतम सागर)

- श्रीराज -

पञ्चरोशनी

वि. सं. २०६०
ई. स. २००४
ता. ३-५-०४
प्रथमावृत्ति-२०००

विजयाभिनन्द
शाका-३२६
सेवा रू. ३५/-

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र

३, सुंदरधाम, जांमली गली,
बोरीवली (प.), मुंबई-९२.
दूरध्वनी क्र. २८९९८७५८.

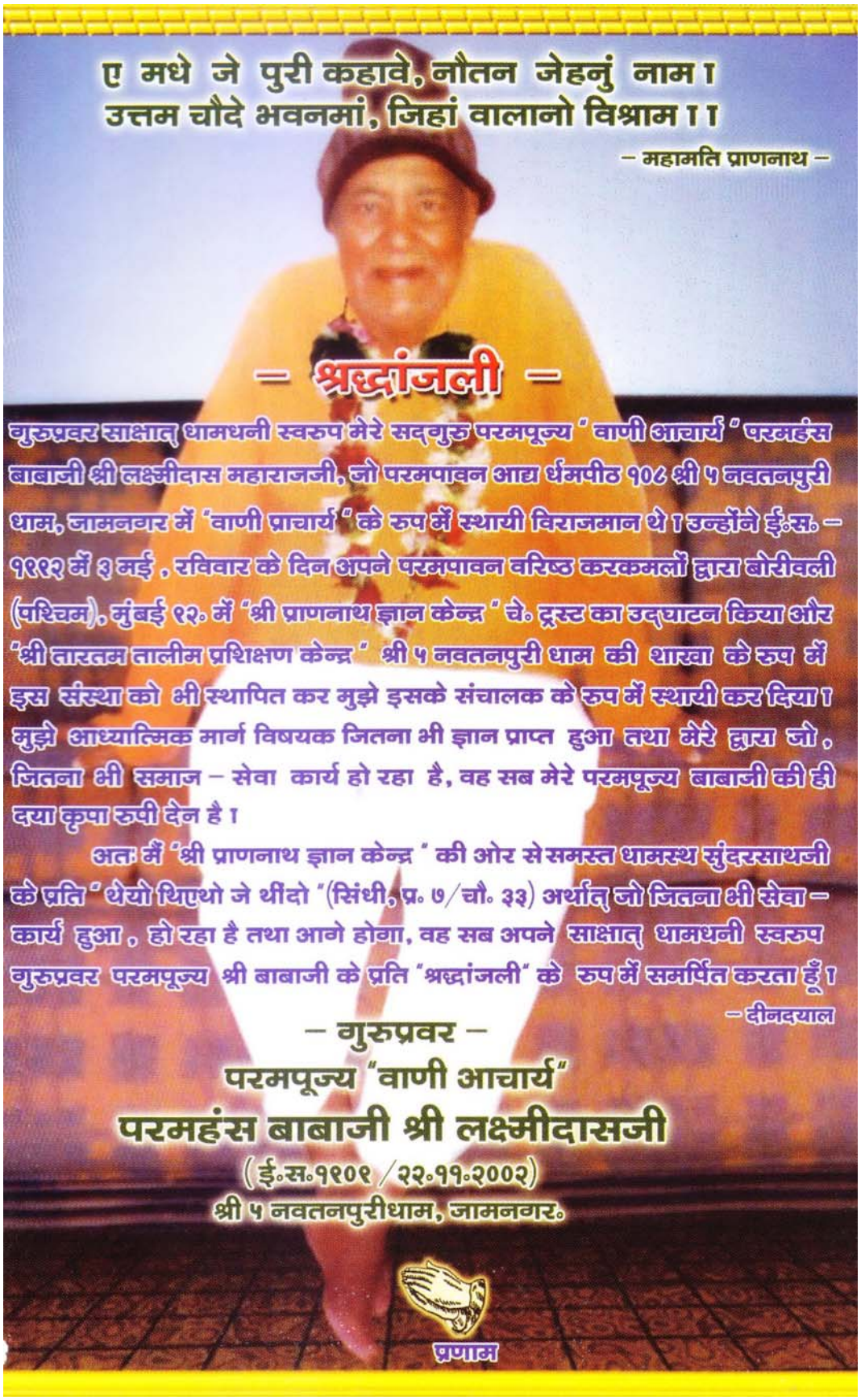

ए मधे जे पुरी कहावे, नौतन जेहनुं नाम ।
उत्तम चौदे भवनमां, जिहां वालानो विश्राम ।।

– महामति प्राणनाथ –

– श्रद्धांजली –

गुरुप्रवर साक्षात् धामधनी स्वरुप मेरे सद्गुरु परमपूज्य " वाणी आचार्य " परमहंस बाबाजी श्री लक्ष्मीदास महाराजजी, जो परमपावन आद्य धर्मपीठ १०८ श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर में 'वाणी प्राचार्य " के रुप में स्थायी विराजमान थे । उन्होंने ई॰स॰ – १९९२ में ३ मई , रविवार के दिन अपने परमपावन वरिष्ठ करकमलों द्वारा बोरीवली (पश्चिम), मुंबई ९२॰ में "श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र " चे॰ ट्रस्ट का उद्घाटन किया और "श्री तारतम तालीम प्रशिक्षण केन्द्र " श्री ५ नवतनपुरी धाम की शाखा के रुप में इस संस्था को भी स्थापित कर मुझे इसके संचालक के रुप में स्थायी कर दिया । मुझे आध्यात्मिक मार्ग विषयक जितना भी ज्ञान प्राप्त हुआ तथा मेरे द्वारा जो , जितना भी समाज – सेवा कार्य हो रहा है, वह सब मेरे परमपूज्य बाबाजी की ही दया कृपा रुपी देन है ।

अतः मैं "श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र " की ओर से समस्त धामस्थ सुंदरसाथजी के प्रति " थेयो थिएथो जे थींदो "(सिंधी, प्र॰ ७/चौ॰ ३३) अर्थात् जो जितना भी सेवा – कार्य हुआ , हो रहा है तथा आगे होगा, वह सब अपने साक्षात् धामधनी स्वरुप गुरुप्रवर परमपूज्य श्री बाबाजी के प्रति "श्रद्धांजली" के रुप में समर्पित करता हूँ ।

– दीनदयाल

– गुरुप्रवर –

परमपूज्य "वाणी आचार्य"

परमहंस बाबाजी श्री लक्ष्मीदासजी

(ई॰स॰१९०९ / २२॰११॰२००२)

श्री ५ नवतनपुरीधाम, जामनगर॰

प्रणाम

- श्रीराज -

पञ्चरोशनी

(श्री कुलजम स्वरुप साहेब के)
(सरल - स्वभाषार्थ)
में-

- भाष्यकार -

श्री प्राणनाथ ज्ञान केंद्र के संस्थापक
परमपूज्य "वाणी आचार्य"
श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (प.), मुंबई-४०० ०९२.

अक्षरातीत श्री कृष्णाय नमः

(श्री कृष्ण प्रणामी धर्म-श्री मन्निजानन्द संप्रदाय)

* पञ्चरोशनी *

- भाष्यकार -

परमपूज्य ''वाणी आचार्य'' श्री दीनदयालजी महाराज

संरक्षक - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट,

बोरीवली (प.), मुंबई - ९२.

- प्रकाशक -

१. हिन्दी, नेपाली - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के संस्थापक

परमपूज्य ''वाणी आचार्य''

श्री दीनदयालजी महाराज,

बोरीवली (प.), मुंबई - ९२.

२. गुजराती - ज्ञान केन्द्र -

C/o. श्री प्राणनाथ महिला मंडल (रजि.),

बोरीवली (प.), मुंबई - ९२.

❊ पुस्तक प्राप्ति स्थान ❊

१. आद्य धर्मपीठ श्री ५ नवतनपुरी धाम
श्री कृष्ण प्रणामी, ''खिजडा मंदिर'',
जामनगर (गुजरात).

२. श्री १०८ प्राणनाथजी मंदिर ट्रस्ट
श्री ५ पद्मावतीपुरीधाम (मुक्तिपीठ),
पन्ना (म. प्र.) पिन - ४८८००१.

३. श्री ५ महामंगलपुरी धाम
श्री कृष्ण प्रणामी मोटा मंदिर,
सैयदवाडा, सूरत-३.

४. श्री कृष्ण प्रणामी मूल मिलावा
मानव मंदिर, वेड रोड, (वराछा रोड),
सूरत-४.

५. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर
डिल्ली बाजार,
काठमांडू (नेपाल).

६. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर
मंगलधाम, रेली रोड, कालिम्पोंग,
दार्जीलिंग, पश्चिम बंगाल (भारत).

७. श्री कृष्ण प्रणामी सेवा समिति
(नवतन धाम), केन्द्रीय कार्यालय, डिल्ली बाजार,
पोस्ट बॉक्स नं. २२९, काठमांडू (नेपाल).

Printed by : **J. K. CORPORATION,** A-14, Anant Nagar, Near N. L. High School,
S. V. Road, Malad (West), Mumbai - 400 064. • Mobile : 98210 44046

विषय सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	अनुभूमिका	१
२.	मंगलाचरण	४
३.	प्रगटवाणी	१६
४.	श्री धाम वर्णन	७६
५.	मूल मिलावा	११६
६.	मेहेर सागर	१३८

अनुभूमिका

मेरे धाम के धर्मसुमन प्यारे श्रीसुन्दरसाथजी !

यह मानव जीवन इस अथाह-अपार संसार-सागर की विकट-विकराल परिस्थितियों में ढल-पल, ढल-पल पानी के बुल-बुले-परकोटे सदृश अवस्था में गुजर रहा है। ऐसे क्षणिक जीवन के अनिश्चित काल में शीघ्रतापूर्वक अपनी अमुल्य आत्मा के कल्याणार्थ श्रीविजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकावतार महामति-अपने धामधनी का देनरूपी वह ज्ञान कैसे ले सके, कैसे प्राप्त कर सके ? तथा कैसे प्राप्त कराया जा सके !! जिस ज्ञान के महत्त्व के विषय में कहा है कि **''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्''**-(गीता, अ.२-४०)।

अर्थः- धर्म का थोड़ा-सा भी ज्ञान भयंकर आवागमनजन्य चक्कर के भय से हमेशा के लिए उबार सकता है। पुनः अपने ही धामधनी के श्रीमुख का भी आह्वान है कि हे आत्माओं **''अरध लवे तारो अरथ सरे, भूंड़ा एवडो तूं कां केहेवराव''**-(रास,प्र.३/चौ.२१)।

अर्थ :- हे अबूझ जीव! यदि तू तारतम का अर्ध लव मात्र भी ज्ञान ग्रहण कर लेता है, तो तेरी आत्मा का कार्य सिद्ध हो जाता है। इस विषय मुझे ज्यादा कहने को क्यों लगाता है ?

उक्त प्रकार का ऐसा साररूपी निचोड़ ज्ञान हमारे (मेरे) सुन्दरसाथजी

के घर-घर तथा हाथ-हाथ में कैसे पहुँचाया जाए, जिससे उन्हें सरलतापूर्वक दैनिक पाठ के साथ-साथ अर्थवत् तात्पर्यता की भी समझ हो सके ?

यदि श्रीमद्भागवत प्रसिद्ध राजा विश्वसह के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट खट्वांग (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ९/९) ऐसी दयनीय स्थिति (दो घड़ी आयु बाकी) में भी उसके अपने मालिक (धनी) के धाम पहुँच सका, तो क्या मेरे धनी के सम्बन्धी सुन्दरसाथजी इस नित्यपाठ का अर्थ आत्मा में ग्रहण कर अपने धनी के अक्षरातीत निज धाम में नहीं पहुँच सकते ? अतः मेरे दिल-दिमाग की तीव्रतापूर्ण ऐसी उतावली के कारण ही यह पुस्तिका अपनी-अपनी भाषा में अर्थ के साथ आप सबके समक्ष उपस्थित हुई है।

वस्तुतः एक धामस्थ सुन्दरसाथजी! आप सब मेरे आन्तरिक ध्येय के विषय को कान धर कर सुन लेंगे तो अत्युत्तम ! मेरे एकात्मारूप यारों का दिल-दिमाग यह न सोचे कि-मेरे इस सेवार्थ कार्य-कलापों का कारण खून लगाकर शहीदों में दाखिल होने के ध्येय के अन्तर्गत है। पुनः मुझे ऐसा भी लगता है कि - उक्त राजा खट्वांग की तरह मेरे प्रत्येक जनों की निजात्मा द्वारा भी लक्ष्यरूपी फल प्राप्त करने के विषय में यदि आत्मानुभव मजबूत बन जाय, तो स्व-धामधनी प्राप्त क्यों नहीं होंगे ?

ऐसी विभिन्न प्रकार की दुनियादारी की नीरस कथा-चर्चा के मध्यस्थ व्यतीत हो रहे जीवन में यदि अपने निजात्मा का लक्ष्य ज्ञान भी अपने धनी के श्री मुख की चौपाइयों के साथ अर्थबोध सहित मिले,

तो धाम की वह कौन आत्मा होगी जो अपने आत्मोद्धार की इच्छा नहीं रखती हो! इन्हीं विचारों के साथ ''पञ्चरोशनी'' रूपी ये पाँच प्रकरण श्री तारतम सागर ग्रन्थ के नित्यपाठ के रूप में सरल अर्थ के साथ आप सुन्दरसाथजी के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ।

विशेष कलिकाल के व्यवहार ग्रस्त गाँव-गाँव के गृहस्थ सुन्दरसाथ भी यदि अपनी भाषा में इसे सरलता पूर्वक समझ सकें, तो धनी के मूल सदुपदेशरूपी ज्ञान को हृदयांगम करने में उन्हें सरलता-सुगमता महसूस होगी। पुनः मनन करने की भी इच्छा बढ़ेगी क्योंकि बिना समझ के पाठ मात्र से, तो समझ के साथ किए गये पाठ द्वारा अपने धाम-धनी के प्रति श्रद्धा-भाव, भक्ति-प्रेम में अवश्यमेव वृद्धि होगी ही और होती भी जाये। ऐसे आत्मविश्वास के साथ मनमानी घर जानी करने के कारण ही यह छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित होकर आप सबके समक्ष आई है। इसकी रक्षा-इज्जत करते हुए इससे कुछ न कुछ ग्रहण करने की ओर अवश्य बढ़ेंगे। यही आशा रखते हुए करबद्ध प्रार्थना करता हूँ। इति - प्रणाम् !

लेखक -

दीनदयाल -

दिनांक : १५-१२-०३ बोरीवली - मुंबई

नित्यपाठ

❊ मंगलाचरण ❊

मंगलाचरण धामको लक्ष्य-बोध

ब्रह्म सृष्टी लीजियो,
हां रे सैया ए है अपना जीवन ।
सखी मेरी जो है मूल वतन,
ब्रह्म सृष्टी लीजियो ॥१॥

सास्त्र सबद मात्र जो बानी,
ताको कलस बानी सबदातीत ।
ताको भी कलस हुओ अखंड को,
तापर धजा धरुं तिनथें रहित ॥२॥

मगज वेद कतेब के,
बांधे हुते जो बचन ।
आदि करके अबलों,
सखी कबहूं न खोले किन ॥३॥

❊ सरलभाषा में - भावार्थ ❊

हे ब्रह्मात्माओं! अपने दिल-दिमाग में अच्छी तरह ग्रहण कर लो। हे धाम की सखियों! हमारे तो जीव के जीवन ही यही हैं। उस मूल घर श्री परमधाम की मेरी जितनी भी संबंधी सखियाँ हैं, वे ही अक्षरातीत ब्रह्म और ब्रह्म धाम की अधिकारी पात्र-हकदार या वारीस हैं। इस बात को अपने दिल में धारण कर लो ॥१॥

हे सखियों! वेद-पुराण, शास्त्र, उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में जितने भी वचन-शब्दादि हैं, उन यावत् शब्दराशियों तथा मंत्र राशियों का सार रूप अर्थात् कलश अखण्ड ब्रज रास लीलाएँ हैं। अखण्ड ब्रज तथा रास, ये उभय लीलायें शब्दातीत हैं। उस शब्दातीत बेहद भूमिका में स्थित अखण्ड अविनाशी सृष्टिकर्ता कूटस्थ अक्षर ब्रह्ममय भूमिका से भी परे अर्थात् बेहद शब्दातीत के भी कलश रूपी अक्षरातीत धाम में मैं ध्वजारोपण कर रहा हूँ ॥२॥

इस सृष्टि के पूर्व (हिंदुओं के) तथा पश्चिम (मुस्लिमों के) इन उभय धर्मों के धर्मरूप ग्रंथों में जितने भी गुह्य-गोप्य ब्रह्मतत्त्व रूपी भेद वचनबद्ध रूप में रखे गये थे, उस ब्रह्मतत्त्व, ब्रह्मधाम तथा आत्मतत्त्व विषयक गुप्तगोय, गुह्यातिगुह्य भेदों को आद्यकाल से लेकर आज तक हे आत्माओं! हे सखियों!! कोई भी, कभी भी खोल नहीं सका है ॥३॥

सुपन बुध बैकुंठ लों,
या निरंजन निराकार ।
सो क्यों सुंनको उलंघ के,
सखी मेरी क्यों कर लेवे पार ॥४॥

सुपन बुध अटकलसों,
वेद कतेब खोजे जिन ।
मगज न पाया माहें का,
बांधे माएने बारे तिन ॥५॥
साधु बोले इन जुबां,
गावे सबदातीत बेहद ।
पर कहा करे बुध मोह की,
आगे ना चले सबद ॥६॥

पांच तत्व मोह अहंकार,
चौदे लोक त्रैगुन ।
ए सुंन द्वैत जो ले खडी,
निराकार निरंजन ॥७॥

वे लोग स्वप्निक बुद्धि के आधार पर स्वर्ग-वैकुण्ठ तक के ही ज्ञान को जाहिर कर सके। स्वप्निक स्वर्ग-वैकुंठ का परिलंघन कर आगे जानेवाले लोग भी आदिनारायण के सूक्ष्म पाद मोहतत्त्व निरञ्जन-निराकार में जाकर समा गये। हे सखियों! वे स्वप्निक बुद्धि वाले शून्य-महाशून्यादि का उलंघन करके परात्पर शब्दातीत अर्थात् बेहद परे अक्षर-अक्षरातीत कैसे प्राप्त कर सकते थे? अतः नहीं कर सके ।।४।।

स्वप्निक संसार में जितने भी ब्रह्मतत्त्व-आत्मतत्त्व के खोजी लोग हुए, वे स्वप्निक बुद्धि द्वारा अटकल लगा-लगाकर वेद-पक्ष तथा कुरान-पक्ष, इन उभय पक्षों के धर्मग्रन्थों के अन्दर विद्यमान गुह्यार्थ-गोप्यार्थ को प्राप्त न कर सके। तब उन्होंने द्वादश प्रकार के अर्थ जाल में उन गोप्य तत्त्वों को बाँधकर छोड़ दिया ।।५।।

ब्रह्मतत्त्व-आत्मतत्त्व का खोज-परिशीलन करने वाले साधुसन्तों, ऋषि-महर्षियों तथा महंतों ने अपनी-अपनी स्वप्निक जिह्वा द्वारा गुह्य ब्रह्म तत्त्व विषय ''वे तत्त्व बेहद में हैं, शब्दातीत हैं, मन-वचनों से परे हैं'' ऐसा कहा। वे बेचारे क्या करें, क्योंकि वे स्वप्निक बुद्धि वाले जागृत बुद्धि तक कैसे पहुँच सकते थे? अतः जब उन लोगों की बुद्धि तथा शब्द-वचन ही वैकुण्ठ-शून्यादि से आगे नहीं जा सके, तो वे वर्णन कैसे करते? ।।६।।

लेकिन उन लोगों ने यह बात अविकल्प दृढ़ निश्चय करके कही है कि-''पाँच तत्त्व, मोह, अहंकार, त्रिगुणात्मक, चौदह लोकादि द्वैत रूप हैं। इससे परे शून्य निराकार-निरंजन है। ये उक्त सभी विस्तार प्रकृतिजन्य होने के कारण अविकल्प रूप से नाशवन्त् हैं ।।७।।

प्रकृति महाप्रलै होवहीं,
सब तत्व गुन निरगुन ।
द्वैत उडे कछू ना रहे,
निराकार निरंजन सुन ॥८॥

बानी जो अद्वैत की,
सो कहावे सबदातीत ।
सो जागृत बुध अद्वैत बिना,
क्यों सुध पावे द्वैत ॥९॥

पैगंमर या तीथंकर,
कै हुए अवतार ।
किन ब्रोध न मेट्यो विस्व को,
किए नहीं निरविकार ॥१०॥

एते दिन त्रैलोक में,
हुती बुध सुपन ।
सो बुधजी बुध जागृत ले,
प्रगटे पुरी नौतन ॥११॥

दृश्यादृश्य जगत के ये सभी यावत् पदार्थ प्रकृतिजन्य तत्त्व, गुण, निर्गुण-शून्यादि, निराकार-निरंजनमय जितने भी द्वैत क्षेत्र हैं, वे सब महाप्रलय काल में उसी तरह अस्तित्त्वहीन होंगे, जिस तरह स्वप्न दृष्टा के जागृत होते ही उसका स्वप्न संसार अपना अस्तित्त्व खो बैठता है ॥८॥

द्वैतपूर्ण क्षेत्र के कार्य-कलाप से परे जो अद्वैतमय भूमिका है, उस अद्वैतमय भूमिका के लिए तो कालातीत, शब्दातीत तथा अगम्यादि वचन कहे गये हैं। उस अद्वैत भूमिका की सुध-खबर, जानकारी, ज्ञानानुभव तथा वर्णन जागृत बुद्धि के सिवाय अन्य कौन कर सकेगा? ॥९॥

नहीं तो इस सृष्टि में आदिकाल से आज दिन तक कई पैगम्बर, कई तीर्थंकर कहलाये, प्रसिद्ध हुए और हर चतुर्युगी में अवतार भी होते रहे हैं तथा आते गये हैं। वस्तुतः किसी ने भी एकेश्वर-अद्वैत ब्रह्मज्ञान प्रदान कर सृष्टि में किसी को भी मायाजन्य क्रोध-ब्रोध, परस्पर होनेवाले अहमेव अहंकार से परिचित कराकर निर्विकार नहीं किया ॥१०॥

इस तरह यह बात स्वयं सिद्ध है कि ''सृष्टि के आद्यकाल से लेकर आज तक त्रिगुणात्मक स्वप्निक सृष्टि में जितनी भी बुद्धियाँ थीं, वे सब स्वप्निक ही थीं। इस कारण अब तो अद्वैत भूमिका से बुद्ध जी स्वरूप श्री देवचन्द्रजी जाग्रत बुद्धि (अद्वैत ब्रह्मज्ञान-तारतम) लेकर आए हैं। जिस स्वरूप के इन्तजार में आज तक सारी सृष्टि थी, वे स्वरूप अब श्री नवतनपुरी से प्रगट हुए हैं ॥११॥

अब सो साहेब आइया,
सब सृष्ट करी निरमल ।
मोह अहंकार उडाए के,
सखी देसी सुख नेहेचल ॥१२॥

सो मगज माएने हुकूमें,
खोले हम सैयन ।
सो कलाम जो हक के,
सुख होसी उमत सबन ॥१३॥

रोसन किल्ली दई हमको,
यों कर किया हुकम ।
खोल दरवाजे पार के,
इत बुलाए लीजो सृष्ट ब्रह्म ॥१४॥

ब्रह्म सृष्ट जाहेर करुं,
करसी लीला रोसन ।
अखंड धनी इत आए के,
किया जाहेर मूल वतन ॥१५॥

अब तो लोक-परलोक के एकेश्वर अद्वैत ब्रह्म स्वरूप साहिब निष्कलंक बुद्धजी आ गए हैं। उनकी जाग्रत बुद्धि-तारतम रूपी निर्मल ज्ञान ने सृष्टि की सर्वात्माओं के अंदर स्थित मायाजन्य विकारों को निर्मूल करके ब्रह्मानुकूल पवित्र निर्विकार बना दिया है। अब मोह अहंकार रूपी विकारों से रहित ब्रह्मधाम की वे आत्मायें सच्चिदानन्द रूपी नेहेचल सुख की अधिकारी बन सकेंगी ।।१२।।

उन उभय पक्ष के सद्धर्म ग्रंथों के गुह्यार्थ-गोप्यार्थ भेद को मैं बुद्धजी की आज्ञा द्वारा अपनी ब्रह्मात्माओं के सामने स्पष्ट रूप से खोल देता हूँ। जितने भी एकेश्वर अद्वैत ब्रह्म-ब्रह्मधाम बोधक वचन हैं, उन वचनों के माध्यम से सृष्टी की सर्वात्माओं को अखण्ड ब्रह्मानंद रूपी सच्चिदानन्द सुख प्राप्त होगा ।।१३।।

उन्होंने चौदह लोक के सम्पूर्ण शब्दों के गुह्य भेदों को खोलने की सामर्थ्यशाली प्रकाशपूर्ण कुञ्जी रूपी तारतम प्रदान कर मुझे आज्ञा दी है कि ''परात्पर अक्षरातीत ब्रह्मधाम का दरवाजा खोलकर, वहाँ की आत्माओं को लेकर आना।'' ।।१४।।

यसर्थ उन बुद्धजी की आज्ञा शिरोधार्य कर, मैं अपने धाम की ब्रह्मात्माओं के समक्ष यह ब्रह्म-ब्रह्मधाम बोधरूपी ज्ञान प्रगट कर रहा हूँ। इस ज्ञान द्वारा आत्म-जागृत का लीला रूपी प्रकाश अब सर्वात्माओं तक पहुँचेगा। अद्वैत ब्रह्मधाम के एकेश्वर धनी ने सृष्टि में आकर महाप्रलयातीत अद्वितीय मूल ब्रह्मधाम को जाहिर कर दिया है ।।१५।।

तीन ब्रह्मांड जो अब रचे,
ब्रह्म सृष्ट के कारन ।
आप आए तिन वास्ते,
सखी पूरे मनोरथ तिन ॥१६॥

अखंड सुख सबन को,
होसी चौदे तबक ।
सो बरकत ब्रह्म सृष्ट की,
पावे दीदार सब हक ॥१७॥

ख्वाब की अकल छोड के,
कहूं अरस के कलाम ।
हक बका जाहेर करुं,
अखण्ड सुख जे ठाम ॥१८॥

दुनी द्वैत जुबां छोड के,
कहूं जुबां अकल और ।
कलाम कहूं अरस अजीम के,
महामत बैठे इन ठौर ॥१९॥

हे धाम की आत्माओं! अब इन तीनों ब्रह्माण्डों (व्रज, रास और जागनी) की रचना करने का कारण समझो। वे अक्षरातीत स्थित हमारे धनी तीनों ब्रह्माण्ड का निर्माण (रचना) कर, इन तीनों ब्रह्माण्ड में हमारी मनोकामना-इच्छा पूर्ण करने-कराने हेतु स्वयं भी हमारे साथ ही खेल में आए हैं ।।१६।।

अब तो चौदह लोकों की सर्वात्माओं-मनुष्यात्माओं को अखण्ड ब्रह्मानंद सुख प्राप्त होगा। ये धाम की उन ब्रह्मात्माओं की कृपा-दया है। इसी कार्य-कारण द्वारा सृष्टी की सर्वात्मायें भी अक्षरातीत अद्वितीय एकेश्वर ब्रह्म के दर्शन प्राप्त कर सकेंगी तथा स्वयं कृत्कृत्य हो जायेंगी ।।१७।।

अब मैं स्वप्निक नश्वर, हद की बुद्धि का परित्याग कर वहीं (अक्षरातीत) की जागृत बुद्धि द्वारा अक्षरातीत धाम के वचन प्रगट करता हूँ तथा इन्हीं अखण्ड वचनों द्वारा अद्वितीय ब्रह्म और ब्रह्मधाम की अखण्ड सुखप्रद भूमिका के धामादि यावत् अविचल लीला स्थल को भी प्रगट करता हूँ ।।१८।।

इस संसार की द्वैत पूर्ण जिह्वा (जबान) का परित्याग कर अब मैं वहीं की (अद्वैत की) जिह्वा और अक्ल से उस अद्वैत भूमिका-अक्षरातीत ब्रह्मधाम का वर्णन-वचन कहता हूँ, जहाँ स्वयं मैं - महामति भी बैठा हूँ ।।१९।।

ला मकान सुंन निरगुन,
छोड फना निरंजन ।
क्षर अक्षर को छोड के,
ए ताको मंगलाचरन ॥२०॥

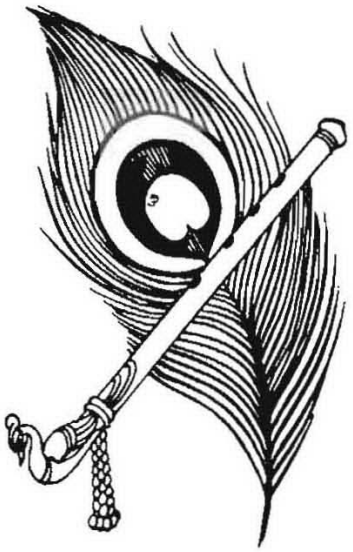

अतः यह चौदह लोक शून्य, निर्गुण, निरञ्जनादि प्रकृतिजन्य क्षरात्मक सृष्टि से परे अर्थात् क्षर तथा अक्षर इन उभय पदाधिकारी पुरुषों को छोड़कर अक्षरातीत उत्तम पुरुष, अद्वैत ब्रह्म, ब्रह्म-धाम का ''मंगलाचरण'' है, जो लक्ष्य-ज्ञान बोध है ॥२०॥

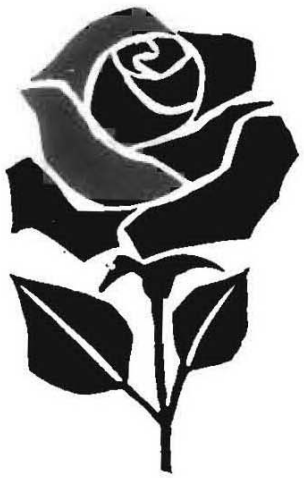

❊ श्री प्रगट वाणी ❊

अब लीला हम जाहेर करें,
ज्यों सुख सैयां हिरदे धरें ।
पीछे सुख होसी सबन,
पसरसी चौदे भवन ॥१॥

अब सुनियो ब्रह्मसृष्ट बिचार,
जो कोई निज वतनी सिरदार ।
अपने धनी श्री स्यामा स्याम,
अपना बासा है निजधाम ॥२॥

सोई अखंड अक्षरातीत घर,
नित वैकुंठ मिने अक्षर ।
अब ए गुझ करूं प्रकास,
ब्रह्मानंद ब्रह्मसृष्टि विलास ॥३॥

❊ भावार्थ ❊

श्री महामति अपने धाम की आत्माओं से कहते हैं कि हे ब्रह्मात्माओं! हे सखियों!! अब मैं उस प्रेमास्पद ब्रह्मलीला को क्रमशः ज़ाहिर करने जा रहा हूँ, जिस लीला के आनन्दमयी सुखों को, वे लीला संबंधी आत्मायें अपने हृदय में धारण करेंगी। तत्पश्चात ब्रह्म तथा ब्रह्मात्माओं की इस प्रेमास्पद लीला द्वारा नश्वर जगत की आत्मायें भी सुखी होंगी और यह सुखमय ब्रह्मलीला चौदह लोकों में व्यापक स्तर पर फैलती जायेगी ॥१॥

हे आत्माओं! अब ध्यान देकर इस लीला का वर्णन सुनो और सुनकर विचार-विवेक करो क्योंकि आप लोग विवेकी आत्माओं में से हो। अतः अक्षरातीत निजधाम की सर्वात्माओं में से जो अग्रगण्य आत्मायें हैं, वे ध्यान से सुनें कि हम ब्रह्मात्माओं के संबंधी धनी अक्षरातीत युगलस्वरूप श्री श्यामश्यामाजी हैं तथा हम सब उन्हीं के साथ उसी धाम में रहने वाली आत्मायें हैं ॥२॥

हमारे निजधाम को वेद-शास्त्रादि में अखण्ड अक्षरातीत ब्रह्मधाम कहते हैं। कूटस्थ सृष्टिकर्ता अक्षर ब्रह्म नित्य वैकुण्ठ (अक्षर) धाम में रहते हैं। आज तक अक्षर-अक्षरातीत की जितनी भी गुह्य-ब्रह्मानंद लीलायें गोप्य रही हैं, उसे मुझे जाहिर करना है, जिसे मैं अक्षरातीत धाम में ब्रह्म और आनन्द स्वरूप श्री श्यामाजी एवं ब्रह्मसृष्टियों के बीच होनेवाली आत्मानंद विलास की लीला वर्णन द्वारा जाहिर करूँगा ॥३॥

ए बानी चित दे सुनियो साथ,
कृपा कर कहें प्राननाथ ।
ए किव कर जिन जानो मन,
श्रीधनीजी ल्याए धामथें बचन ॥४॥

सो केहेती हूं प्रगट कर,
पट टालूं आडा अंतर ।
तेज तारतम जोत प्रकास,
करूं अंधेरी सबको नास ॥५॥

अब खेल उपजे के कहूं कारन,
ए दोऊ इच्छा भई उतपन ।
बिना कारन कारज नहीं होए,
सो कहूं याके कारन दोए ॥६॥

ए उपजाई हमारे धनी,
सो तो बातें हैं अति घनी ।
नेक तामें करूं रोसन,
संसे भान देऊं सबन ॥७॥

हे धाम की सखियों! आप लोग उन वचनों को चित्त देकर ध्यानपूर्वक सुन लीजिए, जिन्हें स्वयं श्री धनीजी अन्तःकरण रूपी दिल में बैठकर हमारे ऊपर दया-कृपा करके कह रहे हैं। आप लोग उन वचनों को कवियों की कविताएँ न समझना। ये वचन श्री धनीजी धाम से लेकर आए हैं और हमें चौंतीस साल तक सुनाकर-समझाकर भी गए हैं ।।४।।

अब मैं उन वचनों को प्रगट कर रहा हूँ, जिनके माध्यम से अपनी आत्मा और धनी के बीच पड़ा हुआ नासमझ-अज्ञानरूपी पर्दा हट जाएगा। तारतम में स्थित तेज, जोत तथा प्रकाश रूपी ज्ञान की समझ से मैं सबके दिल-दिमाग से आत्मा और धनी के बीच के अज्ञानरूपी अंधकार को निर्मूल कर दूँगा ।।५।।

अब मैं सर्वप्रथम इस स्वप्निक खेल के उत्पन्न होने का कारण स्पष्ट करता हूँ। यह खेल दोनों (अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मसृष्टियों) की इच्छा के प्रतिफल उत्पन्न हुआ है। बिना कारण के कोई भी कार्य घटता नहीं है। तो सृष्टि विस्तार का जो कार्य हुआ, उसका क्या कारण था? इसलिए इस विषय के दोनों कारणों को मैं स्पष्ट करता हूँ ।।६।।

इस स्वप्निक नश्वर संसार रूपी खेल को उत्पन्न करानेवाले हमारे धनी ही हैं। परंतु उन्होंने इस संसार की उत्पत्ति क्यों की, इसका कारण तो अत्यंत रहस्यपूर्ण है। उन अनेकों रहस्यपूर्ण बातों में से मैं थोड़ा-सा रहस्य अपनी आत्माओं के समक्ष स्पष्ट-रोशन करता हूँ, जिससे अनेकानेक शंका-उपशंकाएँ निर्मूल हो सकती हैं ।।७।।

अब सुनियो मूल बचन प्रकार,
जब नहीं उपज्यो मोह अहंकार ।
नाहीं निराकार नाहीं सुन,
ना निरगुन ना निरंजन ॥८॥

ना ईस्वर ना मूल प्रकृति,
ता दिन की कहूं आपाबीती ।
निज लीला ब्रह्म बाल चरित,
जाकी इच्छा मूल प्रकृत ॥९॥

नैन की पाओ पलमें इसारत,
कै कोट ब्रह्मांड उपजत खपत ।
इत खेल पैदा इन रवेस,
त्रैलोकी ब्रह्मा विस्नु महेस ॥१०॥

कै विध खेले यों प्रकृत,
आप अपनी इच्छा सों खेलत ।
या समे श्री बैकुंठनाथ,
इच्छा दरसन करने साथ ॥११॥

हे आत्माओं! अब ध्यान देकर उस महाकारण के मूल वचनों को सुन लीजिए। जब इस खेल रूपी सृष्टि के विस्तार का मूल मोह-अहंकार ही उत्पन्न नहीं हुआ था, न तो निराकार तथा शून्य ही था और न निर्गुण तथा निरञ्जनादि का अस्तित्त्व ही था ।।८।।

उस वक्त न ईश्वर (आदिनारायण) था और न उसे उत्पन्न करने वाली पाँचवीं क्षर समष्टि रूपी मूल प्रकृति ही उत्पन्न हुई थी। उक्त प्रकार वर्णित सबकी उत्पत्ति के पूर्व आज के दिन जो ब्रह्मात्माओं पर 'आपबीती' अर्थात् तीसरी भोम में जो 'प्रेम संवाद' हुआ था, वह बता रहा हूँ। अतः ध्यान से सुनो। बालचरित्र रूपी निजलीला करनेवाले कूटस्थ अक्षर ब्रह्म ही हैं, जिनकी इच्छा ही मूल प्रकृति (सतस्वरूप) है ।।९।।

बाललीला करनेवाले अक्षरब्रह्म ऐसे सामर्थ्यशाली हैं कि अपनी आँखों की एक पल के पाव हिस्से जितने समय के एक इशारे में कई करोड़ ब्रह्माण्डों को उत्पन्न तथा नाश कर देते हैं। उनके पाव पल समय में इस प्रकार की अनेकों नारायणी सृष्टि सहित त्रिदेवा (ब्रह्मा, विष्णु शिवादि) उत्पन्न और नाश होते रहते हैं ।।१०।।

यह अक्षरब्रह्म कई प्रकार से अपनी मनरूपी प्रकृति द्वारा अपनी इच्छा मात्र से उत्पन्न-लय रूपी खेल खेलता रहता है। इस समय आज के दिन सुबह हमारे धनी की प्रेरणा से अक्षरब्रह्म को हम अक्षरातीत सखियों की धनी के साथ की अंतरंग लीला का दर्शन करने की इच्छा हुई ।।११।।

अक्षर मन उपजी ए आस,
देखों धनीजी को प्रेम विलास ।
तब सखियों मन उपजी एह,
खेल देखें अक्षर का जेह ॥१२॥

तब हम जाए पियासों कही,
खेल अक्षर का देखें सही ।
जब एह बात पियाने सुनी,
तब बरजे हांसी करने घनी ॥१३॥

मने किए हमको तीन बेर,
तब हम मांग्या फेर फेर फेर ।
धनी कहे घरकी ना रेहेसी सुध,
भूलसी आप ना रेहेसी ए बुध ॥१४॥

तो मने करत हैं हम,
हमको भी भूलोगे तुम ।
तब हम फेर धनीसों कह्या,
कहा करसी हमको माया ॥१५॥

आज सुबह हमें देखते ही अक्षर के मन में ऐसी आस-इच्छा उत्पन्न हुई कि अक्षरातीत धाम के अन्दर धनी तथा सखियों के बीच होने वाली अंतरंग प्रेममय लीला (विलास) कैसी होती होगी? वहाँ हम सखियों के मन में भी यह ख्याल उत्पन्न हुआ कि इस अक्षर पुरुष का बाललीला रूपी नाटक-खेल कैसा होता होगा? यह देखने की इच्छा हुई ॥१२॥

तब हम सब लोगों ने मिलकर अपने प्रियतम धनी से कहा कि ''हम अक्षर का नया खेल देखेंगे, आप हमें दिखाइए। हमारी खेल देखने की बातें सुनते ही, हमारी हँसी करने के इरादे से धनी हमें खेल देखने से रोकते हुए मना करने लगे।'' ॥१३॥

धनी ने हमें तीन-तीन बार नकारते हुए मना किया। इस तरह खेल देखने के विषय में धनी हमें मना करते गए और हम भी ज़िद करते हुए तीन बार खेल देखने के लिए माँगते गए। हमें मना करते हुए धनी कहने लगे कि खेल में जाने पर यहाँ की अक्ल, सुध-बुध नहीं रहेगी। यहाँ तक कि खेल में तुम लोग अपने आप को भी भूलोगी। यहाँ की यह अक्ल वहाँ नहीं रहेगी ॥१४॥

इसी कारण से मैं तुम्हें मना कर रहा हूँ कि वहाँ जाने पर अन्य बातें तो छोड़ दो, तुम सब मुझे भी भूल बैठोगी। यह बात सुनते ही हम धनी से पुनः कहने लगी कि ऐसी झूठी बातें मत कीजिए। खेल में हम आपको भूल जायेंगी? असम्भव! ऐसा कभी नहीं हो सकता। माया हमें क्या करेगी? माया हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगी ॥१५॥

तब हम मिलके कियो बिचार,
कह्या एक दूजीको हूजो हुसियार ।
खेल देखनकी हम पियासों कही,
तब हम दोऊ पर आग्या भई ॥१ ६॥

ए कहे दोऊ भिंन भिंन,
खेल देखन के दोऊ कारन ।
उपज्यो मोह सुरत संचरी,
खेल हुआ माया विस्तरी ॥१ ७॥

इत अक्षर को विलस्यो मन,
पांच तत्त्व चौदे भवन ।
यामें महाविस्नु मन मनथें त्रैगुन,
ताथें थिर चर सब उतपन ॥१ ८॥

इस प्रकार ज़िद करते हुए खेल देखने की आज्ञा माँगने पर आज्ञा तो मिली, पर श्री राजजी की बातें सुनकर हम सब डर गईं। तब हम सब- ने मिलकर विचार किया कि ''धनी के कहे मुताबिक हमें खेल में भूलना नहीं चाहिए और यदि कोई भूल जाता है, तो हम एक-दूसरे को सावधान-सचेत करते रहेंगे'' ऐसा निर्णय लिया गया। इस प्रकार हमने अपने धनी से खेल देखने की आज्ञा माँग ली और धनी ने भी हमें खेल देखने की आज्ञा दे दी ।।१६।।

इस तरह खेल की रचना विषयक दोनों कारण भिन्न-भिन्न रूप से स्पष्टतया रख दिये हैं। यह खेल उभय पक्षों अर्थात् अक्षर ब्रह्म और हम बारह हजार की इच्छापूर्ति के लिए रचा गया है। हमें आज्ञा देने के पश्चात् श्री राजजी की इच्छा होते ही अक्षर ब्रह्म पर श्री राजजी द्वारा फरामोशी (नींद) पड़ी तथा मोह उत्पन्न हुआ। स्वप्न में अक्षर की सूरता प्रविष्ट हुई। अक्षर ब्रह्म ने आदिनारायण होकर 'एकोऽहं बहुस्याम्' के आधार पर मायावी खेल का विस्तार किया ।।१७।।

इस स्वप्निक नारायणी सृष्टि में अक्षर का मन अव्याकृत द्वारा नारायण के रूप में पाँच तत्त्व त्रिगुणात्मक चौदह लोक रूपी ब्रह्माण्ड तैयार हुआ। इस सृष्टि में सर्वप्रथम अक्षर का मन आदिनारायण (महाविष्णु) हुआ। उससे मनरूपी शेषशायी की, शेषशायी (अहंकार) स्वरूप से त्रिदेवा की तथा त्रिदेवा से थिर-चर, स्थावर-जंगम, चौरासी लाख योनियों की उत्पत्ति हुई ।।१८।।

या विध उपज्यो सब संसार,
देखलावने हमको विस्तार ।
जो आग्या भई हम पर,
तब हम जान्या गोकुल घर ॥१९॥

ज्यों नींदमें देखिए सुपन,
यों उपजे हम ब्रजबधू जन ।
उपजत ही मन आसा घनी,
हम कब मिलसी अपने धनी ॥२०॥

जेती कोई हैं ब्रह्मसृष्ट,
प्रेम पूरन धनी पर द्रष्ट ।
कंसके बंध वसुदेव देवकी,
इत आई सुरत चतुर्भुज की ॥२१॥

सुरत विस्नुकी चतुर्भुज जोए,
दियो दरसन वसुदेव को सोए ।
पीछे फिरे केहेके हकीकत,
अब दोए भुजा की कहूं विगत ॥२२॥

इस प्रकार अक्षर ब्रह्म के आधार पर स्वप्निक संसार उत्पन्न हुआ। हमें अक्षर का नाटक दिखाने के लिए धनी ने ही इन सबका विस्तार करवाया। तत्पश्चात् हमें भी मूलमिलावे में बैठाकर श्रीराजजी ने खेल देखने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही हम सब नारायणी सृष्टि के चौदह लोक में, चौदह लोकों में से मृत्युलोक तथा मृत्युलोक में भी भारतवर्ष के व्रजमण्डल में प्रगट हुई और अपने को व्रजवधुएँ-गोपियाँ समझने लगी ।।१९।।

हम लोग अपने धाम के मूल मिलावे को छोड़कर खेल में उसी तरह प्रगट हुए, जिस तरह नींद में उत्पन्न स्वप्न के ब्रह्मांड में हम कहाँ से कहाँ निकल जाते हैं। व्रज में उत्पन्न होते ही हम लोग अपने को व्रजवधुएँ मान बैठीं और हमारे दिल में प्रबल आशाएँ-इच्छाएँ उमड़ने लगी कि हम अपने धनी से कब मिलेंगे ।।२०।।

इस तरह धनी मिलन की प्रबल इच्छाओं का उमड़ना उन्हीं के दिल में हुआ, जो ब्रह्मात्मायें थीं। अतः उन सबकी आत्मीय दृष्टि रूपी अंकुर में मूल से ही अपने धनी के प्रति पूर्ण प्रेम भरा हुआ था। उधर जहाँ कंस के कारागृह में वसुदेव और देवकी बंधन में बँधे हुए थे, वहाँ चतुर्भुजी भगवान विष्णु की सुरता आई ।।२१।।

चतुर्भुज विष्णु की सुरता ने कारागृह में वासुदेव को दर्शन देकर सारी हकीकत समझा दिया कि आगे क्या-क्या करना है। जब चतुर्भुज स्वरूप वापस लौट गए, तब वसुदेव तथा देवकी के समक्ष दो भुजावाला एक बालक प्रगट हुआ। अब मैं उस दो भुजी बालक की बातें स्पष्ट रूप से बताता हूँ ।।२२।।

मूल सुरत अक्षर की जेह,
जिन चाह्या देखों प्रेम सनेह ।
सो सुरत धनीको ले आवेस,
नंद घर कियो प्रवेस ॥२३॥

दो भुजा सरूप जो स्याम,
आतम अक्षर जोस धनी धाम ।
ए खेल देख्या सैयां सबन,
हम खेले धनी भेले आनंद घन ॥२४॥

बाल चरित्र लीला जोवन,
कै विध सनेह किए सैयन ।
कै लिए प्रेम विलास जो सुख,
सो केते कहूं या मुख ॥२५॥

ए कालमाया में विलास जो करे,
सो पूरी नींदमें सब विसरे ।
पूरी नींद को जो सुपन,
कालमाया नाम धराया तिन ॥२६॥

अक्षरब्रह्म की वह मुख्य सुरता, जिस सुरता ने अक्षरातीत अन्तःपुर की अंतरंग लीला के दर्शन की उग्र चाहना की थी, वही सुरता अक्षरातीत प्रियतम का आवेश-शक्ति लेकर यहाँ व्रजमण्डल में नन्दबाबा के घर में प्रगट हुई ।।२३।।

दो भुजा वाले श्याम के स्वरूप में अक्षर की आत्मा के साथ अक्षरातीत श्री धनीजी का जोश-शक्ति है। इन स्वरूप ने अपनी अंगना स्वरूप धाम की बारह हजार सखियों को ग्यारह वर्ष बावन दिन तक व्रज मण्डल में खेल दिखाया। हम सखियों ने अपने प्रियतम के साथ व्रजमण्डल में विशिष्ट आनन्द के साथ बाललीला विषयक क्रीड़ा की ।।२४।।

वहाँ व्रजमण्डल-गोकुल में प्रियतम ने हमारे साथ बाल स्वभाव चरित्रवत् लीला के साथ-साथ कुछ युवावस्था की लीला भी की। इस प्रकार हम सखियों को श्री राजजी के जोश ने कई प्रकार से स्नेह-प्रेम का अनुभव करवाया। वहाँ की प्रेम-विलास की लीला में जो उन्होंने हमें कई प्रकार के सुख दिये, उन सुखों की बातें मैं इस जबान से कितनी और कैसे कहूँ? ।।२५।।

व्रज की बाललीला में जो प्रेम-विलास किया, वह कालमाया का था। यह लीला कालमाया की होने के कारण पूर्ण नींद में लिये हुए सभी सुख विस्मृत हो गये। पूर्ण नींद के स्वप्नवत् होने से उस लीला के ब्रह्माण्ड को ही कालमाया की संज्ञा दी गयी ।।२६।।

तब धाम धनिएं कियो बिचार,
ए दोऊ मगन हुए खेले नर नार ।
मूल बचन की नाही सुध,
ए दोऊ खेले सुपन की बुध ॥२७॥

एह बात धनी चितसों ल्याए,
आधी नींद तब दई उडाए ।
अग्यारे बरस और बावन दिन,
ता पीछे पोहोंचे वृन्दावन ॥२८॥

तहां जाए के बेन बजाई,
सखियां सबे लई बुलाई ।
तामसियां राजसियां चलीं,
स्वांतसियां सरीर छोडके मिलीं ॥२९॥

जब हम दोनों (अक्षर और सखियाँ) व्रजलीला के प्रेम में मद्मस्त थे, तब धामधनी-अक्षरातीत प्रियतम ने हमारी मस्ती-तल्लीनता को देखकर विचार किया कि ये दोनों-अक्षर और सखियाँ यहाँ सुध-बुध खोकर खेल रहे हैं। इन दोनों को मूल में दिये हुए वचन याद नहीं हैं। ये दोनों स्वप्निक बुद्धि ग्रस्त होकर सब कुछ विस्मृत कर मदमस्त खेल रहे हैं ॥२७॥

इस प्रकार हमारी हालत संबंधी बातें जब प्रियतम ने दिल में लीं, तब उन्होंने अपना जोश लेकर आये हुए अक्षर की आत्मा की आधी नींद (विस्मृती) हटाकर उन्हें स्मृति करा दिया कि अरे! मैं तो रास रचाने आया हूँ, न कि गौ चराने!! तब वे ग्यारह वर्ष व्यतीत होने पर बावनवें दिन की संध्या के वक्त गौ लेकर व्रजमण्डल में आते-आते बीच रास्ते से ही लौट गए तथा वृन्दावन पहुँच गए ॥२८॥

वहाँ वृन्दावन में पहुँच कर उन्होंने (बालाजी-प्रियतम ने) वंशी की नाद द्वारा ध्वनि कर हम सब सखियों को श्री वृन्दावन बुलवाया। वंशी की नाद सुनते ही हम सब सखियाँ वृन्दावन में उपस्थित हुईं। वंशी की नाद सुनते ही हममें से सर्वप्रथम तामसी सखियाँ व्रज छोड़ कर चलीं गईं तथा उनके पीछे-पीछे राजसी सखियाँ दौड़ गईं। घर-परिवार वालों के रूकावट डालने के कारण सभी स्वातसी सखियों ने पञ्चभौतिक शरीर का व्रज में ही परित्याग कर दिया तथा वे आत्मरूप से वृन्दावन दौड़ गईं और अपने जमात से मिल गईं ॥२९॥

और कुमारका ब्रज बधू संग जेह,
सुरत सबे अक्षर की एह ।
जो व्रत करके मिली संग स्याम,
मूल अंग याके नहीं धाम ॥३०॥

बेन सुनके चली कुमार,
भवसागर यों उतरी पार ।
इनकी सुरत मिली सब सखियों मांहि,
अंग याके रासमें नांहिं ॥३१॥

या विध मुक्त इनों की भई,
कुमारका सखियां जो कही ।
ए जो अग्यारे बरस लों लीला करी,
कालमाया तितहीं परहरी ॥३२॥

व्रजवधुओं के साथ उनकी पुत्री के रूप में जो कुमारिका सखियाँ थीं, उन सबकी उत्पत्ति अक्षर की सुरता द्वारा हुई थी। इन कुमारिकाओं ने कात्यायनी देवी के व्रत द्वारा प्राप्त वरदान के आधार पर श्याम को प्राप्त किया था। इन सखियों की, ब्रह्मात्माओं की तरह मूल (अक्षर धाम) में भिन्न-भिन्न परात्मायें नहीं हैं। इन सबकी परात्मा एक ही अर्थात् अक्षर ब्रह्म हैं ।।३०।।

वंशी की नाद (ध्वनि) सुनते ही ये कुमारिका सखियाँ भी दौड़ पड़ीं। इस प्रकार व्रजवधुओं के साथ-साथ वे भी भवसागर से पार हो गईं। इन प्रत्येक कुमारिकाओं की सुरता हम बारह हजार में से प्रत्येक में क्रमशः दो-दो गिनती से समाविष्ट हुईं। इन कुमारिकाओं का अंग-शरीर रास में नहीं था अर्थात् इन्होंने ब्रह्मात्माओं द्वारा धारण किए गए योगमाया के शरीर में प्रविष्ट होकर रास रमण किया ।।३१।।

इस प्रकार हम बारह हजार ब्रह्मात्माओं के साथ रास रमण करके जो सखियाँ अपने स्थान मूलघर (अक्षर धाम) को प्राप्त हुईं, वे कुमारिका सखियाँ कहलातीं हैं। ग्यारह वर्ष बावन दिन की लीला कालमाया द्वारा निर्मित जिस व्रजमण्डल में की गई, उस कालमाया के ब्रह्माण्ड की यावत् सामग्रियों का कालमाया में ही परित्याग कर हम योगमाया के ब्रह्माण्ड में निकल आये ।।३२।।

कछू नींद कछू जाग्रत भए,
जोगमाया के सिनगार जो कहे ।
जोगमाया में खेले जो रास,
आनन्द मन आनी उलास ॥३ ३॥

जोगमाया में खेल जो खेले,
संग जोस धनी के भेले ।
जोगमाया में बाढ्यो आवेस,
सुध नहीं दुख सुख लवलेस ॥३ ४॥

फेर मूल सरूपें देख्या तित,
ए दोउ मगन हुए खेलत ।
जब जोस लियो खेंच कर,
तब चित चौंक भई अक्षर ॥३ ५॥

योगमाया का ब्रह्मांड तथा वहाँ धारण किया हुआ शरीर योगमाया की ही दैवत थी। हम सब कुछ नींद-कुछ जागृत अवस्था में थे अर्थात् पूर्ण में से तीन हिस्सा जागृत था और एक हिस्से में नींद थी। ऐसी अवस्था में हमने योगमाया के शरीर में प्रविष्ट होकर योगमाया के ही वस्त्र-भूषणादि का सिंगार कर महारास रमण किया। मन में अधिकाधिक हर्ष, उमंग, उल्लास के साथ यह आनन्दमय महारास लीला आनन्दकारी योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही खेली गयी ।।३३।।

इस प्रकार आनन्दकारी योगमाया के ब्रह्मांड में योगमाया का शरीर धारण कर महारास रमण में अपने धनी के जोश के साथ मिलकर, हम ऐसे रस मग्न हो गए कि परस्पर उत्तरोत्तर आवेश बढ़ने के कारण हम लवलेश मात्र भी दुःख या सुख का अनुभव नहीं कर सके ।।३४।।

इस तरह हमारी रास रमण में मग्न अवस्था देखकर मूल स्वरूप ने पुनः विचार किया कि ये दोनों ही (अक्षर और सखियाँ) रास लीला में मदमस्त-मग्न होकर खेल रहे हैं। तब मूल स्वरूप ने रास रमण करने वाले स्वरूप के अन्दर विद्यमान अपने जोश को खींच लिया। जोश खिंचते ही रास बिहारी-अक्षर ब्रह्म का चित्त चौंक उठा तथा उनकी आत्मा अक्षर धाम में जाग उठी और यहाँ रास मण्डल में श्री कृष्ण जी अन्तर्ध्यान हो गए ।।३५।।

कौन वन कौन सखियाँ कौन हम,
यों चौंकके फिरी आतम ।
रास आया मिने जाग्रत बुध,
चूभ रही हिरदे में सुध ॥३६॥

कै सुख रास में खेले रंग,
सो हिरदे में भए अभंग ।
या विध रास भयो अखण्ड,
थिर चर जोगमाया को ब्रह्मांड ॥३७॥

तब इत भए अंतरध्यान,
सब सखियां भई मृतक समान ।
जीव ना निकसे बांधी आस,
करने धनीसों प्रेम विलास ॥३८॥

अक्षरधाम में जागृत हुई अक्षर की आत्मा सोचने लगी कि अरे! वह वृन्दावन, वे सखियाँ कौन थीं? कहाँ गईं? मैं कैसे रास रमण कर रहा था? चित्त चौंक जाने के पश्चात् आत्म चिंतन करते-करते अक्षर की जागृत बुद्धि (सबलिक) में रास अखण्ड हुआ। रास अखण्ड होने के पश्चात् ''मैं रास में कहाँ से आया'' यह सोचने पर व्रज की ग्यारह वर्ष बावन दिन की लीला भी अक्षर के हृदय-सबलिक के कारण में अखण्ड हो गयी। इस तरह सबलिक के कारण में व्रज तथा महाकारण में रास लीला चुभ (अखण्ड) गयी ।।३६।।

इस प्रकार हमने कई प्रकार की रामतों के साथ आनन्दप्रद रास रमण किया। रास रमण करते समय जितनी भी लीलायें की गईं, वे सब की सब अक्षर के हृदय-चित्त (सबलिक) अन्तःकरण में अखण्ड हुईं। इनके साथ-साथ योगमाया के ब्रह्मांड के सभी पदार्थ थिर-चर, नदी-नाले आदि यावत् सामग्रियाँ भी नेहेचल-अखण्ड हो गईं ।।३७।।

जैसे ही अक्षरधाम में अक्षर की आत्मा जागृत हुई, तत्क्षण योगमाया के ब्रह्मांड में रास रमण करते-करते रासराज श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए और सब सखियाँ धनी वियोग के विरह में मृततुल्य होकर मरणावस्था में पहुँच गयीं। परंतु अपने धनी के साथ रास खेलने की इच्छा-आशा रूपी तंतु के शेष रह जाने के कारण मृततुल्य शरीर में से जीव निकल न सका ।।३८।।

बिरह सैयोंने कियो अत,
धनी दियो आवेस फेर आई सुरत ।
तब सैयों को उपज्यो आनंद,
सब बिरह को कियो निकंद ॥३९॥

आया सरूप कर नए सिनगार,
भजनानंद सुख लिए अपार ।
दोऊ आतम खेले मिने खांत,
सुख जोस दियो कै भांत ॥४०॥

कै बिरह विलास लिए मिने रात,
अंग आनंद भयो जोलों प्रात ।
रास खेल के फिरे सब एह,
साथ सकल मन अधिक सनेह ॥४१॥

पीछे जोगमाया को भयो पतन,
तब नींद रही अक्षर सैयन ।
व्रज लीलासों बांधी सुरत,
अखंड भई चढि आई चित ॥४२॥

उस वक्त हम सखियों ने मरणावस्था में पहुँचकर विशेष रूप से विरह किया। हम लोगों ने सारा वृन्दावन छान डाला। अंत में जब हमने व्रज की लीला का अनुकरण किया, तब मूल स्वरूप ने पुनः अपना जोश छोड़ दिया। जोश छोड़ते ही धनी हमारे बीच प्रगट हुए। तत्पश्चात् हम सखियों में भी अधिकाधिक हर्ष, उमंग तथा आनंद उमड़ आया। धनी के आते ही विरह-वियोग का दुःख दर्द निर्मूल हो गया ।।३९।।

धाम सम्राट हमारे धनी नये हर्ष, उमंग, उल्लास तथा प्रेमादि सिंगारयुक्त स्वरूप में होकर आये। हम सखियों ने विरह-विलास रूपी भजन करके भी धनी प्राप्त कर पुनः संयोग का अपार सुख लिया। हम दोनों (अक्षर और सखियों) ने बड़ी चाह से रास रमण किया तथा धनी के जोश ने भी हमें भाँति-भाँति से सुख दिया ।।४०।।

इस प्रकार योगमाया के ब्रह्माण्ड की इस रात्रि में हुए महारास रमण में हमने कई प्रकार से विलास और वियोग का अनुभव किया। अन्तर्ध्यान के पश्चात् जब धनी पुनः प्रगट हुए, तब से लेकर प्रभात तक हमने अंग-प्रत्यंग में आनंद-उमंग लेकर बेशुमार आनन्द भरी रास रामतें कीं ।।४१।।

हमारे योगमाया के ब्रह्माण्ड से स्वधाम चले जाने के बाद योगमाया में रचित रास मण्डल का ब्रह्मांड समेट लिया गया। अपनी-अपनी परात्मा में केंद्रित होते ही हमें और अक्षर को भी ज्ञात हुआ कि ये सभी लीलायें तो नींद के स्वप्न में की गयीं थीं। पुनः जब अक्षर की सुरता ने व्रजलीला की स्मृति की, तब सारी व्रजलीला अक्षर की चित्त (अंतःकरण) रूपी बुद्धि में अखण्ड हो गई। रास के ब्रह्माण्ड की ही तरह इस ब्रह्माण्ड को भी अखण्ड कहते हैं ।।४२।।

अक्षर चितमें ऐसो भयो,
ताको नाम सदासिव कह्यो ।
ब्रज रास दोऊं ब्रह्माण्ड,
ए ब्रह्मलीला भई अखंड ॥४३॥

ब्रज रास लीला दोऊं मांहिं,
दुख तामसियों देख्या नाहिं ।
प्रेम पियासों ना करे अंतर,
तो ए दुख देखे क्यों कर ॥४४॥

कछुक हमको रह्यो अन्देस,
सो राखे नहीं धनी लवलेस ।
ता कारन ए भयो सुपन,
हुए हुकमें चौदे भवन ॥४५॥

कालमाया को ए जो इंड,
उपज्यो और जाने सोई ब्रह्मांड ।
ए तीसरा इंड नया भया जो अब,
अक्षर की सुरत का सब ॥४६॥

अक्षर ब्रह्म के चित्त अन्तःकरण में अर्थात् सबलिक स्थान में ये लीलायें सदाशिव (अखण्ड) हुईं। इस प्रकार सबलिक के महाकारण स्थान में रास लीला और कारण स्थान में व्रजलीला अखण्ड हुई। इन उभय लीलाओं को सृष्टि में ब्रह्मलीला के नाम से जाना जाता है ।।४३।।

व्रज और रास इन दोनों ही ब्रह्म लीलाओं में बारह हजार सखियों में से छः हजार तामसी सखियों ने दुःख नहीं देखा अर्थात् वे दुःख का अनुभव नहीं कर सकीं क्योंकि इन सखियों को अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण प्रेम में कोई शक न था। अतः वे यह अन्तर नहीं जान सकीं, तो वे दुःख का अनुभव कैसे कर सकती थीं? ।।४४।।

व्रज-रास में होते समय बारह हजार में से छः हजार तामसियों में दुःख देखने की चाहना शेष रह गई थी। हमारी लवलेश मात्र भी चाहना धनी अधूरी नहीं रहने देना चाहते थे। यसर्थ पुनः धनीजी ने अपनी आज्ञा से पहले की ही तरह कालमाया का यह स्वप्निक चौदह लोक रूपी ब्रह्माण्ड खड़ा किया ।।४५।।

योगमाया के ब्रह्मांड के बाद पुनः कालमाया के दूसरे ब्रह्मांड की रचना की गई, परंतु सारी दुनिया उसे प्रथम निर्मित ब्रह्मांड ही मानती है। बीच में अकालिक महाप्रलय हुआ। इन बातों से अनजान रहने के कारण लोग इसे पहले का ही ब्रह्माण्ड मानते हैं। वर्तमान स्थित जो ब्रह्मांड है, वह तीसरा नवनिर्मित ब्रह्माण्ड है। यह सब सृष्टि कर्ता अक्षर ब्रह्म की सुरता द्वारा बना है ।।४६।।

याही सुरत की सब सखियाँ भई,
प्रतिबिम्ब वेदऋचा जो कही ।
जाको कह्यो ऊधो ग्यान जोगारंभ,
सो क्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिम्ब ॥४७॥

जो ऊधोने दई सिखापन,
सो मुख पर मारे फेर बचन ।
याही बिरह में छोडी देह,
सो पोहोंची जहां सरूप सनेह ॥४८॥

अक्षर हिरदे रास अखंड कह्यो,
ए प्रतिबिम्ब साथ तहां पोहोंचयो ।
ए प्रतिबिम्ब लीला जो भई इत,
सो कारन ब्रह्मसृष्ट के सत ॥४९॥

ये अक्षर की सुरता वाली सखियाँ वे ही हैं, जो प्रथम कालमाया के ब्रह्मांड की गोपियों और कुमारिकाओं की जगह पर उनके प्रतिबिम्ब रूप में थीं। इन्हें ही वेदऋचा सखियाँ कहते हैं। इन्हीं वेदऋचा सखियों को उद्धवजी ने योगाभ्यास विषयक ज्ञान दिया था, परंतु प्रेम लीला वाली सखियों का प्रतिबिम्ब होने के कारण, उन्होंने योगाभ्यास के ज्ञान को नहीं माना तथा ठुकरा दिया ।।४७।।

जिन सखियों को उद्धवजी ने योगाभ्यास का सदुपदेश दिया था, उन सखियों ने प्रेम के वचनों द्वारा उद्धवजी का मुख-मर्दन कर दिया। अतः उसी प्रेम विरह में विरह करते-करते उन्होंने जीवन व्यतीत कर दिया और अंत में अपने प्रेमी स्वरूप के पास अव्याकृत के महाकारण स्थान के प्रतिभासिकी रास में उनके प्रेम-स्नेह से पहुँच गयीं ।।४८।।

कूटस्थ अक्षर के हृदय में स्थित जिस रास को अव्याकृत के महाकारण में अखण्ड कहा है, ये प्रतिबिम्बित सखियाँ (वेदऋचा सखियाँ) उसी रास लीला में पहुँच गईं। यह जो प्रतिबिम्बित रासलीला (छः महिना तक) हुई, वह दुनिया को मूल ब्रह्मसृष्टि द्वारा रचित वास्तविक रासलीला का बोधार्थ कराने के लिए हुई है ।।४९।।

जो प्रगट लीला न होवे दोए,
तो असल नकल की सुध क्यों होए।
ता कारन ए भई नकल,
सुध करने संसार सकल ॥५०॥

सारे अरथ तब होवें सत,
जो प्रगट लीला दोऊ होवें इत।
याही इंड में श्री कृस्नजी भए,
सो अग्यारे दिन ब्रज मथुरा रहे॥५१॥

दिन अग्यारे ग्वाला भेस,
तिन पर नहीं धनीको आवेस।
सात दिन गोकुल में रहे,
चार दिन मथुरा के कहे ॥५२॥

गज मल कंस को कारज कियो,
उग्रसेन को टीका दियो।
कालाग्रह में दरसन दिए जिन,
आए छुड़ाए बंध थें तिन ॥५३॥

यदि दोनों (वास्तविक और प्रतिभासिकी) लीलायें नहीं की जातीं, तो असली और नकली की पहचान कैसे प्राप्त होती? इसी कारण वेदऋचा सखियों द्वारा यह प्रतिभासिकी (छः महिने तक चली) रास लीला खेली गई। सारे संसार को सच्ची लीला का बोधार्थ कराने हेतु ही यह झूठी लीला रची गई ।।५०।।

तभी (प्रतिबिम्बित लीला होने के बाद ही) सारी अर्थपूर्ण वास्तविकता का निर्णय होगा, जिनका खुलासा इन दोनों लीलाओं के प्रत्यक्ष होने के कारण हुआ। उस प्रतिबिंबित ब्रह्मांड में भी बिम्ब लीला की तरह श्री कृष्णजी का अवतार हुआ। इन स्वरूप ने ग्यारह दिन तक व्रज तथा मथुरा में रहकर लीला की ।।५१।।

वे स्वरूप ग्यारह दिन तक पूर्ववत् ही ग्वाल भेष में रहे। इनके अंदर उस समय अक्षरातीत-प्रियतम का आवेश (शक्ति) नहीं था। ये स्वरूप सात दिन गोकुल में और चार दिन मथुरा में रहे, जो कि सबको विदित ही है ।।५२।।

मथुरा की चार दिन की लीला में उन्होंने कुवलंयापीड़ नामक हाथी का तथा चाणुर-मुष्टिक पहलवान का निदान किया तथा राजा कंस को मुक्ति दी। तत्पश्चात् उग्रसेन का राज्याभिषेक कर उन्हें राज्याधिपति पद से विभूषित किया। कारागृह में जिन स्वरूप ने प्रगट होकर दर्शन दिया था, उन्हीं ने बंधन से मुक्ति दिलाई ।।५३।।

वसुदेव देवकी के लोहे भांन,
उतारयो भेष किए अस्नान ।
जब राजबागे को कियो सिनगार,
तब बल पराक्रम ना रह्यो लगार ॥५४॥

आए जरासिंध मथुरा घेरी सही,
तब श्रीकृस्नजीको अति चिंता भई ।
यों याद करते आया बिचार,
तब कृस्न बिस्नुमय भए निरधार ॥५५॥

तब बैकुंठ में विस्नु ना कहे,
इत सोले कला संपूरन भए ।
या दिन थें भयो अवतार,
ए प्रगट बचन देखो बिचार ॥५६॥

सिसपाल की जोत बैकुंठ गई,
समाई श्रीकृस्नमें तित ना रही ।
आउध अपने मगाए के लिए,
कै विध जुध असुरोंसों किए ॥५७॥

वसुदेव, देवकी को हथकड़ी के बंधन से मुक्त किया। तत्पश्चात् ग्वाल भेष उतारकर स्नान किया। जब उन्होंने ग्वाल भेष का त्याग कर राजभेष धारण किया, तब उनके पास प्रतिबिम्ब लीला करने की शक्ति-बल तथा पराक्रम भी बिल्कुल नहीं रहा ।।५४।।

कुछ समय के बाद जब जरासंध ने निश्चय कर मथुरा पर चढ़ाई की, तब आवेश (शक्ति) रहित श्री कृष्णजी को अति चिन्ता हुई। अपने पूर्व पराक्रम पर विचार-याद करते-करते चिंतातुर श्री कृष्ण के अंदर तुरंत वैकुण्ठाधीश विष्णु की पूर्ण शक्ति प्रविष्ट हुई तथा श्री कृष्ण विष्णुमय हो गए ।।५५।।

तब उस वक्त वैकुंठ धाम में विष्णु भगवान नहीं रहे-ऐसा कहा है। यहाँ विष्णु भगवान ने पूर्ण सोलह कलायुक्त अवतार लिया। इसी दिन तथा इसी समय से विष्णु का पूर्ण अवतार हुआ। इस तरह प्रगट इन प्रत्यक्ष वचनों को विचार करके देखो ।।५६।।

जब शिशुपाल की आत्मा-ज्योति सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर वैकुण्ठ गई, तब विष्णु की अनुपस्थिति में उनकी आत्मा (ज्योत) वैकुंठ से पुनः लौट आई और श्री कृष्ण में ही समाविष्ट हुई। जब श्री कृष्ण विष्णुमय हुए, तब उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र मँगाकर कई प्रकार से असुरों के साथ युद्ध किया ।।५७।।

मथुरा द्वारका लीला कर,
जाए पोहोंचे विस्नु वैकुंठ घर ।
अब मूल सखियाँ धाम की जेह,
तिन फेर आए धरी इत देह ॥५८॥

उमेदां तामसियां रही तीन बेर,
सो देखन को हम आइयां फेर ।
इन ब्रह्मांड को एह कारन,
सुनियो आतम के श्रवन ॥५९॥

रास खेलते उमेदां रही तित,
सो सब ब्रह्मसृष्टि आइयां इत ।
यामें सूरत आई स्यामाजी की सार,
मतू मेहेता घर अवतार ॥६०॥

कुंवरबाई माता को नाम,
उत्तम कायस्थ उमरकोट गाम ।
आए श्री देवचन्द्रजी नौतनपुरी,
सुख सबन को देने देह धरी ॥६१॥

मथुरा तथा द्वारिका में विष्णु शक्तियुक्त होकर श्री कृष्ण ने विभिन्न प्रकार की लीलाएँ की। अंत में एक सौ बारह वर्ष बाद विष्णु कृष्ण अपने घर-वैकुण्ठ धाम पधारे। अब मूल अक्षरातीत धाम की जो बारह हजार ब्रह्मसृष्टियाँ रास मण्डल के पश्चात् वापस अपने घर को लौट गयीं थीं, उन्होंने पुनः इस ब्रह्मांड में प्रगट होकर शरीर धारण किया ।।५८।।

इसका कारण यह था कि तामसी सखियों की खेल देखने की इच्छा तीनों बार (वंशी की नाद के समय, उथला में और अन्तर्ध्यान के समय) पूर्ण न हो सकी। इसी कारण हम सब सखियाँ पुनः दुःखरूपी खेल देखने इस संसार में आईं। इस ब्रह्मांड की रचना का मूल कारण यही था। अतः इन सब बातों को आत्मीय श्रवण द्वारा सुनकर उस पर विचार कीजिए ।।५९।।

रास मण्डल में रास खेलते समय भी कितने सखियों की इच्छा-चाहना अधूरी रह जाने के कारण हम सभी सखियों को यहाँ पुनः आना पड़ा। अतः इस ब्रह्मांड में मूल श्री श्यामाजी की मुख्य सुरता ने श्री मतुमेहता के घर में अवतार लिया ।।६०।।

उनकी माता का नाम कुँवरबाई था। वे उमरकोट नामक गाँव के उत्तम कायस्थ कुल में प्रगट हुए थे तथा इस संसार में श्री देवचंद्रजी नाम से श्री नवतनपुरी में प्रसिद्ध हुए। अतः परमधाम के आनन्दस्वरूप, सृष्टि के सम्पूर्ण जीवों को अखण्डानन्दमय सुख प्रदान करने के लिए शरीर धारण कर यहाँ आये ।।६१।।

इन इत आए करी बडी खोज,
चाहे धनी को मूल संयोग ।
अंग मूल उपजी यह दृष्ट,
सास्त्र सबद खोजे कै कष्ट ॥ ६२॥

चौदे बरसलों नेष्टा बंध,
बचन ग्रहे सारी सनंध ।
कै जप तप किए व्रत नेम,
सेवा सरूप सनेह अति प्रेम ॥ ६३॥

कै कसनी कसी अति अंग,
प्रेम सेवामें ना कियो भंग ।
कै कसौटी करी दुलहिन,
सो कारन हम सब सैयन ॥ ६४॥

पियाजी किए अति प्रसन्न,
तीन बेर दिए दरसन ।
तारतम बात वतन की कही,
आप धाम धनी सब सुध दई ॥ ६५॥

इन स्वरूप ने संसार में आकर एकेश्वर परमात्मा की बड़ी खोज की। वहाँ की मूल आनन्द स्वरूपा को धनी-संयोग की तीव्र इच्छा हुई। यह अन्तर दृष्टि मूल से ही उत्पन्न होने के कारण अनेकों दुःख-दर्द, कष्ट सहन कर उन्होंने शास्त्र के प्रत्येक शब्दों द्वारा प्रियतम की खोज करने की कोशिश की ।।६२।।

चौदह वर्ष तक दृढ़ निष्ठा के साथ उन्होंने श्रीमद्भागवत के वचनों को सभी प्रकार से ग्रहण किया। प्रियतम से संयोग के लिए उन्होंने कईयों जप-तप किये तथा कईयों व्रत-नियमादि का पालन किया। इस प्रकार अत्यंत प्रबल सेवा द्वारा उन्होंने स्नेही स्वरूप को रिझा लिया ।।६३।।

उन्होंने अपने शरीर को कईयों प्रकार की कसनी में उतारा तथा प्रेम-सेवा में किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ने दिया। उन्हें-दुलहिन को अर्थात् श्री श्यामाजी स्वरूप को कईयों कसनी रूपी कसौटियों में उतरना पड़ा। उन्होंने ये सारे दुःख हम बारह हजार ब्रह्मात्माओं के लिए उठाये ।।६४।।

उन्होंने अपनी प्रेम-सेवा द्वारा प्रियतम को अत्यंत प्रसन्न कर दिया। प्रसन्न होकर प्रियतम ने भी उन्हें तीन बार दर्शन दिया तथा तारतम मंत्र सहित धाम की, निज आत्मा की, श्री परमधाम की तथा प्रियतम स्वरूप की सारी सुध-पहचान करा दी ।।६५।।

धरयो नाम बाई सुन्दर,
निज वतन देखाया घर ।
इत दया करी अति घनी,
अंदर आए के बैठे धनी ॥६६॥

दियो जोस खोले दरबार,
देखाया सुंन के पार के पार ।
ब्रह्मसृष्टि मिने सुन्दरबाई,
ताको धनीजीएं दई बड़ाई ॥६७॥

सब सैयों मिने सिरदार,
अंग याही के हम सब नार ।
श्री धामधनीजी की अरधंग,
सब मिल एक सरूप एक अंग ॥६८॥

श्री धाम लीला बैकुंठ अखंड,
ब्रज रास लीला दोऊ ब्रह्मांड ।
ए सब हिरदेमें चढ़ आए,
ज्यों आतम अनभव होत सदाए ॥६९॥

प्रियतम ने दर्शन देकर ''तुम्हारी परात्मा का नाम सुन्दरबाई है'' यह निश्चित कराकर अपना घर-श्री अक्षरातीत धाम का दर्शन करवा दिया। दुलहिन-श्री श्यामाजी स्वरूप पर अत्यंत दया करते हुए प्रियतम-धनी उनके हृदय रूपी मंदिर में आकर विराजमान हो गए ।।६६।।

तब धनी ने अपना जोश-शक्ति देकर श्री धाम दरवाजा खोल दिया तथा वह धाम शून्य परे अक्षर तथा अक्षर से भी परे है, यह दिखा दिया। इस प्रकार बारह हजार ब्रह्मसृष्टियों में से श्री सुन्दरबाई सखी को प्रियतम ने संसार के बीच अकथनीय बड़ाई दी तथा उन्हें यशस्वी बना दिया ।।६७।।

ये स्वरूप हम सब सखियों के मूल अग्रगण्य स्वरूप हैं तथा हम सब सखियाँ इन स्वरूप का अंग रूप हैं। श्री धाम के प्रियतम की अर्धांग और हम बारह हजार सखियों का एक प्रियतम-श्री धनी के स्वरूप में समावेश है ।।६८।।

जब दुलहिन स्वरूप श्री श्यामाजी के अंदर प्रियतम विराजमान हुए, तब श्री श्यामाजी स्वरूप सद्गुरु के हृदय में श्री धामलीला, अक्षरकृत नित्य वैकुण्ठ की लीला एवं अखण्ड व्रज तथा रास इन दोनों ब्रह्माण्डों की सभी लीलायें प्रत्यक्ष हो आईं, जिस तरह निरंतर आत्मानुभव हुआ करता है ।।६९।।

अब ए केते कहूं प्रकार,
निजधाम लीला नित बड़ो विहार ।
अक्षरातीत लीला किसोर,
इत सैयां सुख लेवें अति जोर ॥७०॥

मोहोल मंदिर को नाहीं पार,
धाम लीला अति बडो विस्तार ।
इन लीला की काहूं ना खबर,
आज लगे बिना इन घर ॥७१॥

ब्रह्मसृष्टि बिना न जाने कोए,
ए सृष्ट ब्रह्मथें न्यारी न होए ।
सो निध ब्रह्मसृष्ट ल्याइयां इत,
ना तो ए लीला दुनि में कित ॥७२॥

ए बानी धनी मुखथें कहे,
सो ए दुनिया क्यों कर लहे ।
गांगजी भाई मिले इन अवसर,
तिन ए बानी लई चित्त धर ॥७३॥

अब इस अखण्ड अविनाशी लीला का वर्णन किस प्रकार करूँ तथा कहूँ ? 'अक्षरात्परतः परः' निजधाम में स्थित नित्य प्रति लीला-विहार करने का स्थान अत्यंत विस्तृत है। समस्त सखियाँ यहाँ अक्षरातीत की किशोर लीला का सर्वोत्कृष्ट सुख पूर्णात्पूर्ण रूप से लिया करती थीं ।।७०।।

यहाँ के महलों-मंदिरों का पारावार ही नहीं है। धामलीला का विस्तार बेशुमार है। आज तक इस लीला की जानकारी सृष्टि में लवलेश मात्र भी नहीं थी। सृष्टि के शुरूवात से लेकर आज तक उस घर की इन आत्माओं के सिवाय इस लीला की जानकारी किसी को न थी ।।७१।।

ब्रह्मसृष्टि के सिवाय यह लीला कोई नहीं जानता। ये ब्रह्मसृष्टियाँ न ब्रह्म से अलग हैं और न होंगी। यह पार-लौकिक आत्मीय धन इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों द्वारा लाया गया है। अन्यथा इस दुनिया में यह ब्रह्मलीला कहाँ से आती? दुनिया के लिये यह अप्राप्य तथा असंभव थी ।।७२।।

ये वचन धनी-सद्गुरु के श्रीमुख से प्रगट हुए हैं। उन वचनों को यह दुनिया कैसे ग्रहण कर सकती है? सर्वप्रथम यह अवसर प्राप्त करने वाले श्री गांगजी भाई हुए, जिन्होंने इन वचनों को अपने चित्त में धारण कर लिया ।।७३।।

कर बिचार पूछे बचन,
नीके अरथ लिए जो इन ।
जब समझाई पारकी बान,
तब धनी की भई पेहेचान ॥७४॥

अपने घरों लिए बुलाए,
सेवा करी बोहोत चित ल्याए ।
सनेहसों सेवा करी जो घनी,
पेहेचान के अपना धामधनी ॥७५॥

तब श्री मुख बचन कहे प्राननाथ,
ढूंढ काढना अपना साथ ।
माया मिने आई सृष्ट ब्रह्म,
सो बुलावन आए हम ॥७६॥

हम आए हैं इतने काम,
ब्रह्मसृष्टि लेने घर धाम ।
तब गांगजीभाई पायो अचरज मन,
कौन मानसी पारके बचन ॥७७॥

गांगजी भाई ने विचार-विवेक करके वचनों का शोध किया और सद्गुरु द्वारा बताए वचनों के वास्तविक अर्थ को शिरोधार्य कर लिया। जब सद्गुरु उन्हें अक्षरातीत के वचन समझाने लगे, तब प्रियतम-स्वरूप की यथातथ्य पहचान उन्हें हो गई ।।७४।।

वहाँ की वास्तविक जानकारी हो जाने पर गांगजी भाई ने उन्हें अपने घर पधरा दिया और अत्यंत प्रेवपूर्वक चित्त लगाकर उनकी सेवा करने लगे। तब उन्होंने स्नेह-प्रेमपूर्ण बेशुमार साक्षात् धाम के धनी स्वरूप जानकर अखण्ड सेवा की तथा जीती हुई बाजी को पुरी तरह से जित लिया ।।७५।।

तब श्री प्राणनाथ जी स्वरूप ने श्री मुख द्वारा ये वचन कहे कि ''इस मायावी संसार में उन ब्रह्मसृष्टियों की आत्मायें आईं हैं, जिन्हें हमें ढूँढ़कर जगाना है।'' उन बारह हजार ब्रह्मात्माओं को पुनः अपने धाम बुलाने-ले जाने के लिए ही मैं श्री परमधाम से यहाँ आया हूँ ।।७६।।

मेरा इस संसार में आने का मुख्य कारण उन ब्रह्मसृष्टि आत्माओं को श्री परमधाम पुनः ले जाना है। श्री प्राणनाथ जी स्वरूप के इन वचनों को सुनकर गांगजी भाई को मन में बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि इस मायावी संसार में धाम के इन वचनों को कौन मानेगा और ग्रहण करेगा? ।।७७।।

कह्या ब्रह्मसृष्टि क्यों मिलसी,
चाल तुमारी क्यों चलसी ।
मोहजल पूर तीखा अति जोर,
नख अंगुरी को ले जाए तोर ॥७८॥

तरंग बड़े मेर से होए,
इत खडा ना रेहेने पावे कोए ।
लेहेरों पर लेहेरें मारे घेर,
मांहें देत भमरियां फेर ॥७९॥

आडे टेढे मांहें बेहेवट,
विक्राल जीव मांहें विकट ।
दुखरूपी सागर निपट,
किनार बेट न काहूं निकट ॥८०॥

ऊंचा नीचा गेहेरा गिरदवाए,
कठिन समया इत पोहोंचा आए ।
हाथ ना सूझे सिर ना पाए,
इन अंधेरी से निकस्यो न जाए ॥८१॥

हे धनी! वे ब्रह्मसृष्टियाँ कैसे मिलेंगी? आपके बताये हुये वचनानुकूल कैसे चलेंगी? क्योंकि इस मायावी समुद्र की लहरें इतनी तीक्ष्ण-जबरदस्त हैं कि मात्र नख के स्पर्श से अंगुली तोड़-मरोड़ कर ले जाती हैं ।।७८।।

मोहजल की तरंगें विशाल पर्वत के समान दिखाई देती हैं। इन तीक्ष्ण तथा विशाल तरंगों की थपेड़ों से लगने वाली चोटें खाकर कोई भी स्थिर नहीं रह सकता। मायावी लहरों की ये तीक्ष्ण तरंगें चारों ओर से प्रहार पर प्रहार करते रहती हैं तथा इस मोह सागर के बीच-बीच में भवरियाँ भी उठा करतीं हैं ।।७९।।

इस अथाह सागर में आड़ी, टेढ़ी तथा तीरछी आदि कई प्रकार की दुस्तर लहरें उठा करती हैं। इस अथाह सागर में स्थित भयंकर जलचर जीव अवसर पाकर मानव रूपी जहाज को निगलने की ताक में रहते हैं। अतः इस चिंताजनक कठिन दुःखदायी मोहसागर का न कहीं किनारा दिखाई देता है और न दूर-दूर तक कहीं कोई नौका या टापू ही दृष्टिगोचर होते हैं ।।८०।।

इस मोहरूपी सागर की ऊँचाई तथा नीचे की गहराई का कोई वारापार नहीं है और न ही उसकी गोलाई अर्थात् गिर्द की ही थाह पाई जा सकती है। अतः इतने घोर कलिकाल में ये ब्रह्मात्मायें इस संसार में आईं हैं। इस अतिघोर अंधकार में न हाथ की सुध और न सिर या पाँव की ही सुध पाई जा सकती है। अतः इस अंधकार से कैसे निकला जा सकता है? ।।८१।।

चढ्यो मायाको जोर अमल,
भूलियां आप मांहें घर छल ।
ना सुध धनी ना मूल अकल,
इन मोहजलको ऐसो बल ॥८२॥

बचन बेहद के पार के पार,
सो क्यों माने हद को संसार ।
त्रिगुन महाविस्नु मोह अहंकार,
ए हद सास्त्रों करी पुकार ॥८३॥

ब्रह्मसृष्टि भी धरे मोहके आकार,
सो इत आवसी कौन प्रकार ।
तब श्री धनीजीएं कहे बचन,
बेहेर दृष्टि होसी रोसन ॥८४॥

ए बंधेज कियो अति जोर,
रात मेटके करसी भोर ।
प्रतक्ष परमान देसी दरसन,
ए लीला चित धरसी जिन ॥८५॥

सबके नख से लेकर सिर तक मायावी नशा जोर-शोर से चढ़ा हुआ है। इस मायावी छल में पड़कर घर तो भूले ही, परंतु स्वयं को भी भूल गए। न तो धनी की सुध रही और न मूल की ही याद-बुद्धि रही। हे धनी! इस मोहजल में इतनी प्रबल ताकत-शक्ति है!! ।।८२।।

बेहद से भी परे के आपके इन वचनों को यहाँ हद की मायाग्रस्त आत्मायें कैसे मानेंगी? वेद-शास्त्रादि में भी त्रिगुण-त्रिदेवा, महाविष्णु, मोह अहंकार तक मायामय हद भूमिका है, ऐसा कहा गया है ।।८३।।

अक्षरातीत से आयी हुई आत्माओं ने भी यहाँ आकर मोहरूपी शरीर ही धारण कर लिया। अतः वे ब्रह्मात्मायें आपके ज्ञानपूर्ण वचनों को सुनकर ज्ञानमार्ग पर कैसे पाँव रखेंगी? तब श्री धनी-सद्गुरु ने उन्हें समझाते हुए कहा कि ''उन आत्माओं की नजरों को प्रत्यक्ष रोसन-दर्शन होगा।'' ।।८४।।

यह प्रबन्ध मूल से ही अकाट्य निश्चित किया हुआ है। शंका-उपशंकारूपी अंधकार निर्मूल हो जायेगा और ज्ञानरूपी उजाले के साथ प्रत्यक्ष प्रमाण सहित परमात्मा-प्रियतम उन्हें दर्शन भी देंगे, जो इस लीला को चित्त में धारण करेगा ।।८५।।

साथ कारन आवसी धनी,
घर घर वस्तां देसी घनी ।
साथ मांहें इत आरोगसी,
विध विध के सुख उपजावसी ॥८६॥

अचरा पकड पीउ देखलावसी,
एक दूजीको प्रेम सिखलावसी ।
ए लीला बढसी विस्तार,
साथ अंग होसी करार ॥८७॥

तब बानी को करसी बिचार,
सब माएने होसी निरवार ।
तब आवसी ब्रह्मसृष्टि,
जाहेर निसान देखसी दृष्ट ॥८८॥

ए बंधेज कियो उत्तम,
पर धाम की निध सो कही तारतम ।
जिन सेती होवे पेहेचान,
नजरों आवे सब निसान ॥८९॥

साथ कारण अर्थात् ब्रह्मात्माओं को दर्शन देने के लिए धनी आयेंगे। सबके घर-घर में विविध प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होंगी। ब्रह्मात्माओं के बीच आकर धनी भोजनादि आरोगेंगे और परस्पर विभिन्न प्रकार के सुख उत्पन्न करेंगे ।।८६।।

ब्रह्मात्मायें पिछौरी पकड़कर एक-दूसरे को प्रियतम के दर्शन करायेंगी। एक दूसरे को प्रेम सिखायेंगी तथा परस्पर प्रेम में वृद्धि करायेंगी। इस तरह आत्म जागृति की जागनी लीला का विस्तार होता जायेगा। सबके अंग-प्रत्यंग में ब्रह्मानंद रूपी आत्मशान्ति प्राप्त होगी ।।८७।।

तब वे तारतम वाणी पर विचार करेंगी। सभी गुह्य भेदों का निर्णय हो जायेगा। तदुप्रान्त ब्रह्मसृष्टियाँ एकत्रित होकर अपने मार्ग पर आयेंगी और अपने-अपने परात्मा स्वरूप का तथा स्वधाम के एक-एक निशानों-चिन्हों का अपनी नजरों से प्रत्यक्ष दर्शन करेंगी ।।८८।।

इस प्रकार श्री धाम के धनी ने सर्वोत्तम प्रबंध कर दिया है, परंतु श्री परमधाम का धन तथा धाम में पहुँचाने वाला मुख्य साधन तो ''श्री तारतम'' ही है, जिसके द्वारा पच्चीस पक्ष की जानकारी होगी तथा आत्मा-धाम, स्वरूपादि के सारे निशान नजर में आ जायेंगे और आत्मा जाग्रत हो जायेगी ।।८९।।

तब गांगजीभाई पाए मन उछरंग,
किए करतब अति घने रंग ।
सनेहसों सेवा करी जो अत,
पेहेचान के धाम धनी हुए गलित ॥९०॥

साथ सों हेत कियो अपार,
सुफल कियो अपनो अवतार ।
मैं श्रीसुन्दरबाई के चरने रहूं,
एह दया मुख किन विध कहूं ॥९१॥

कह्यो ताको इन्द्रावती नाम,
ब्रह्मसृष्टि मिने घर धाम ।
मों पर धनी हुए प्रसन्न,
सोंपे धामके मूल बचन ॥९२॥

आद के द्वार ना खुले आज दिन,
ऐसा हुआ ना कोई खोले हम बिन ।
सो कुंजी दई मेरे हाथ,
तूं खोल कारन अपने साथ ॥९३॥

ये सभी बातें सुनकर गांगजी भाई के मन में बड़ा हर्ष-उमंग हुआ। तब वे अति आनन्द पूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन करने लगे। श्री सद्गुरु स्वरूप को साक्षात् श्री धाम का धनी जानकर वे अपना जीवन धन्य धन्य मानने लगे तथा माधुर्य भाव की प्रेम-सेवा में गलित हुए। तब से जीवन भर उनकी सेवा की ।।९०।।

श्री सद्गुरु संबंधी ब्रह्मात्माओं के साथ भी उन्होंने अपार हेत-प्यार किया। इस प्रकार गांगजी भाई ने अपना मानव जीवन ही सफल बना दिया। श्री सुंदरबाई सद्गुरु के चरण में मैं-इन्द्रावती सदा समर्पित रहती हूँ। उनके द्वारा की गयी दया का वर्णन मैं किस मुख से किस तरह बताऊँ ।।९१।।

उन्होंने मेरी परात्मा का नाम इन्द्रावती बताते हुए मेरी पहचान कराई। श्री अक्षरातीत धाम की ब्रह्मात्माओं में से मुझ पर धनी अत्यंत प्रसन्न हुए। तब श्री परमधाम के मूल श्री तारतम वचन की जिम्मेदारी उन्होंने मेरे हाथ में सौंप दी ।।९२।।

आद्य सृष्टि से लेकर आज तक जिस धाम दरवाजे को कोई खोल न सका, उसे खोलने वाला मेरे सिवाय न कोई हुआ था और न कोई होगा। उस धाम दरवाजे को खोलने की हिम्मत-शक्ति तथा तारतम ज्ञानरूपी कुंजी-चाभी सद्गुरु स्वरूप ने मेरे हाथ में देते हुए कहा कि ''हे इन्द्रावती! तू इस दरवाजे को अपने धाम के साथ के लिए खोल।'' ।।९३।।

मोहे करी सरीखी आप,
टालने हम सबोंकी ताप ।
आतम संग भई जाग्रत बुध,
सुपनथें जगाए करी मोहे सुध ॥९ ४॥

श्रीधनीजीको जोस आतम दुलहिन,
नूर हुकम् बुध मूल वतन ।
ए पांचों मिल भई महामत,
वेद कतेबों पोहोंची सरत ॥९ ५॥

या कुरान या पुरान,
ए कागद दोऊ परवान ।
याके मगज माएने हम पास,
अंदर आएके खोले प्राननाथ ॥९ ६॥

आप भी ना खोले दरबार,
मुझसे खोलाय कियो विस्तार ।
मोहे दई तारतम की करनवार,
सो काहूं न अटकों निरधार ॥९ ७॥

इस प्रकार मुझे अपने समान बनाकर आज्ञा दी। हम ब्रह्मात्माओं के त्रिताप दुःख मिटाने हेतु उन्होंने मेरी आत्मा के साथ अक्षर की जागृत बुद्धि का मिलान किया तथा मुझे बेसुध स्वप्नावस्था में से जागृत अवस्था में लाकर सुध-बुध करा दी ।।९४।।

श्री धनीजी का जोश-शक्ति, श्यामाजी की आत्मा, तारतम, श्री राजजी की आज्ञा और अक्षर की जागृत बुद्धि इन पाँचों शक्तियों की संयुक्ताकार पदवी देकर आपने मुझे महामति के रूप में सृष्टि में प्रगट किया, जिससे अब वेद तथा कतेब में आपके द्वारा कहे गए वचन (सरत) प्रमाणित हुए (पूरे हुए) ।।९५।।

कुरान पक्ष में देखें या पुराण पक्ष में ढूँढे । दोनों ही पक्षों के धर्मग्रन्थों में इसका यथार्थ रूप से प्रमाण है । दोनों ही पक्षों के गुह्यार्थ भेदों का यथातथ्य निर्णय मेरे पास है। जिन्हें मेरे अंतःकरण में विराजमान प्राणनाथ स्वरूप ने ही खोल दिया है ।।९६।।

जाहिर में जिस दरबार का दरवाजा आपने भी नहीं खोला, उस दरबार के दरवाजे का द्वार आपने मेरे हाथ द्वारा खुलवाकर उसका विस्तार किया। मुझे तारतम का कर्ता-धर्ता बनाकर अर्थात् जिम्मेदारी देकर कहा कि ''अब गुह्यार्थ भेद खोलने में निश्चय ही तुम कहीं नहीं अटकोगे तथा कोई बाधा नहीं आयेगी।'' ।।९७।।

सब संसेको कियो निरवार,
कोई संशय ना रह्या वार के पार ।
रोसन करूं लेऊं हुकम बजाए,
ब्रह्मसृष्टि और दुनिया देऊं जगाए ॥९८॥

द्वार तोबा के खुले हैं अब,
पीछे तो दुनियां मिलसी सब ।
जब द्वार तोबा के मूंदयो,
रैन गई भोर जो भयो ॥९९॥

या भली या बुरी,
जिनहूं जैसी फैल जो करी ।
तब आगूं आई सबों की करनी,
जिन जैसी करी आप अपनी ॥१००॥

तब कोई नहीं किसी के संग,
दुःख सुख लेवे अपने अंग ।
करूं ब्रह्मसृष्ट को मिलाप,
अखंड सूर उदे भयो आप ॥१०१॥

इस तरह उन्होंने मेरी सभी शंका-उपशंकाओं को निर्मूल कर दिया। आदि से लेकर अंत तक किसी भी प्रकार की कोई शंका शेष न रही। अब प्राप्त हुकम द्वारा प्रगट-प्रकाश करता हूँ। इस खेल में आयी हुई प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि को ढूँढ़-ढूँढ़ कर जागृत कर दूँगा और दुनिया के सभी जीवों को भी जगा दूँगा ॥९८॥

अब (साक्षात् स्वरूप के होने तक) क्षमा के द्वार खुल गये हैं। बाद में तो यह ज्ञान सारी दुनिया को मिलेगा। क्षमा के द्वार बंद हो जाने के बाद रात्रि रूपी अज्ञान निर्मूल होकर मिट जायेगा और तत्पश्चात् भोर-मध्याह्न सदृश ज्ञानरूपी दिन आ जायेगा ॥९९॥

तब चाहे आपके शुभ कर्म हों या अशुभ कर्म हों। जिन-जिन ने जैसे-जैसे कर्म, चाल-चलन, व्यवहार कर जीवन व्यतीत किया हो, अंत में सबके कर्मों के फल आगे आयेंगे। जिस-जिस ने अपने लिए जैसे कर्म किये होंगे, उसे वैसे ही फल भोगने पड़ेंगे ॥१००॥

तब उस समय किसी के पास कोई रक्षक या साथ देनेवाला नहीं रहेगा। अपनी कमाई दुःखदायी हो या सुखप्रद हो, जैसी भी हो अपने ही सिर पर लेनी पड़ेगी। अब ब्रह्मात्माओं को ढूँढ़-ढूँढ़ कर एकत्रित करता हूँ। सृष्टि में अपने आप अखण्ड धाम का ज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है ॥१०१॥

विस्व मिली सब करने दीदार,
पीछे कोई ना रहे मिने संसार ।
ब्रह्मसृष्टि को पिया संग सुख,
सो कह्यो न जाए या मुख ॥१०२॥

ब्रह्मसृष्टि को ऐसो नूर,
जो दुनिया थी बिना अंकूर ।
ताए नए अंकूर जो कर,
किए नेहेचल देख नजर ॥१०३॥

श्रीधनीजी को दीदार सब कोई देख,
हो गई दुनिया सब एक ।
किनहूं कछुए ना कह्यो,
क्रोध ब्रोध कांहूंको ना रह्यो ॥१०४॥

श्रीधनीजी को ऐसो जस,
दुनिया आपे भई एक रस ।
तेज जोत प्रकास जो ऐसो,
काहूं संसे ना रह्यो कैसो ॥१०५॥

अब विश्व के सभी लोग एकत्र होकर उन स्वरूप का दर्शन करेंगे। सृष्टि में कोई भी उनके दर्शन से वंचित नहीं रह जायेगा। प्रियतम से मिलाप की सुखाधिकारी ब्रह्मात्माओं को होनेवाले ब्रह्मानंद-सुख का वर्णन इस मुख से नहीं किया जा सकता ।।१०२।।

ब्रह्मात्माओं के अंदर ऐसा प्रकाश-शक्ति है कि उन्होंने अंकुर रहित (संबंध रहित) दुनिया को भी अपनी दृष्टि-शक्ति द्वारा नया अंकुर प्रदान कर नश्वर को अविनाशी बना दिया तथा अखण्ड में नेहेचल कर दिया ।।१०३।।

सभी लोग श्री धनीजी के प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे और आपस के मायाजन्य क्रोध, ब्रोध-ईर्ष्या को छोड़कर एक हो जायेंगे। प्रत्यक्ष दर्शन कर कोई भी उनके प्रतिकूल कुछ कह नहीं पायेगा। किसी में किसी के भी प्रति क्रोध नहीं रह जायेगा और न ब्रोध-ईर्ष्या का ही अस्तित्त्व रह जायेगा ।।१०४।।

श्री धनी-प्रियतम में ऐसा यश-कीर्ति तथा उनमें ऐसी शक्ति है कि ''दुनिया अपने आप ही एकरस-एकेश्वर भक्त बन गई''। श्री तारतम में स्थित तेज ज्योति-प्रकाश भी ऐसा है कि जो किसी में भी किसी प्रकार की अंधकारजन्य शंका-उपशंकायें तथा विकार नहीं रहने देगा ।।१०५।।

सब जातें मिली एक ठौर,
कोई ना कहे धनी मेरा और ।
पियाके बिरहसों निर्मल किए,
पीछे अखंड सुख सबोंको दिए ॥१०६॥

ए ब्रह्मलीला भई जो इत,
सो कबहूं हुई ना होसी कित ।
ना तो कै उपज गए इंड,
भी आगे कई होसी ब्रह्मांड ॥१०७॥

ए तीन ब्रह्मांड हुए जो अब,
ऐसा हुआ न होसी कब ।
इन तीनों में ब्रह्मलीला भई,
ब्रज रास और जागनी कही ॥१०८॥

ज्यों नींद में देखिए सुपन,
यों ब्रज को सुख लियो सैयन ।
सुपन जोगमाया को जोए,
आधी नींद में देख्या सोए ॥१०९॥

विभिन्न जाति-पाति तथा भाँति की आत्मायें एक जगह पर एकत्रित हो जायेंगी। किसी के मुख से भी ये शब्द नहीं निकलेंगे कि '' मेरे धनी-ईश्वर कोई और हैं''। प्रियतम के वियोग की विरहजन्य अग्नि से सबकी आत्मा निर्मल बन जाएगी तथा अखण्ड सुख प्राप्त करेगी ।।१०६।।

ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्म जागृत रूपी ब्रह्मलीला की जो जागनी लीला यहाँ हुई, ऐसी लीला पहले न कहीं हुई थी और न आगे (अन्य ब्रह्मांड में) कभी होगी। अन्यथा ऐसे ब्रह्मांड सृष्टि में कितने हुए और कितने होंगे ।।१०७।।

अभी इस सृष्टि में जो तीन ब्रह्मांड हुए, ऐसे ब्रह्मांड न पहले कभी हुए और न कभी होंगे। इस सृष्टि के तीनों ब्रह्माण्डों में ब्रह्मलीलायें हुई, जिसे व्रज, रास और जागनी लीला कहा है ।।१०८।।

मस्त नींद के स्वप्न में अनुभव किए सुख की तरह हम ब्रह्मात्माओं ने व्रज का सुख लिया तथा योगमाया के रास-मण्डल का जो सुख था, उसका अनुभव हमने आधी निद्रा तथा आधी जागृत अवस्था के स्वप्नवत् स्वरूप में लिया ।।१०९।।

कछुक नींद कछुक सुध,
रास को सुख लियो या विध ।
जागनी को जागते सुख,
ए लीला सुख क्यों कहूं या मुख ॥११०॥

जागनी में लीला धाम जाहेर,
निसान हिरदें लिए चित्त धर ।
तब उपज्यो आनंद सबों करार,
ले नजरों लीला नित विहार ॥१११॥

इतहीं बैठे घर जागे धाम,
पूरन मनोरथ हुए सब काम ।
धनी महामत हंस ताली दें,
साथ उठा हंसता सुख ले ॥११२॥

आधी निद्रा और आधी जागृत अवस्था के स्वप्नमय सुख के समान रास मण्डल का सुख लिया। इस जागनी के ब्रह्मांड में जागृत अवस्था में हम जिस सुख-लीला का अनुभव ले रहे हैं, उसका वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ? ।।११०।।

इस जागनी के ब्रह्मांड में अक्षरातीत धाम की लीला प्रगट हुई। पच्चीस पक्ष के एक-एक निशान को हृदय रूपी चित्त में धारण कर लिया। तब सबके अंदर ब्रह्मानंद शांति-सुख उत्पन्न हुआ। सभी ने श्री परमधाम की नित्यविहार की लीला प्रत्यक्ष नजर में ली ।।१११।।

इस नश्वर संसार के शरीर रूपी घर में बैठ-बैठे ही श्री परमधाम के परात्म शरीर में जागृत हो उठे। सबकी हर प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण हुई। अतः श्री महामति स्वरूप कहते हैं कि ''अब हम खेल के सुखपूर्ण उमंग सहित हँसते-खेलते, ताली देते हुए एक ही साथ अक्षरातीत प्रियतम के पास उठेंगे'' ।।११२।।

प्रणाम्–

❊ श्री धाम वर्णन ❊

अब आओ रे इसक भानूं हाम,
देखूं वतन अपना निज धाम ।
करूं चरन तले विश्राम,
विलसों पियाजी सों प्रेम काम ॥१॥

अब बानी अद्वैत मैं गाऊं,
निज स्वरूप की नींद उडाऊं ।
सब सैयों को भेली जगाऊं,
पीछे अक्षर को भी उठाऊं ॥२॥

जब प्रलै प्रकृति होई,
ना रहे अद्वैत बिना कोई ।
एक अद्वैत मंडल इत,
धनी अंगना के अंग नित ॥३॥

अब याही रट लगाऊं,
ए प्रेम सबों को पिलाऊं ।
अब ऐसी छाक छकाऊं,
अंग असलू इसक बढाऊं ॥४॥

❊ भावार्थ ❊

हे इशक! हे प्रेम!! अब मेरे हृदय में प्रगट हो आओ। मेरी चाहना पूर्ण होगी। अपना श्री धाम-निज वतन प्रत्यक्ष देखना है और श्री राजजी के चरण तले आराम-विश्राम करना है। प्रेमपूर्वक अपनी सभी इच्छाएँ पूर्ण कर प्रियतम के साथ विलास करना है ।।१।।

अब मैं अद्वैत के वचन-वाणी प्रगट कर रहा हूँ तथा साथ ही अपने स्वरूप पर पड़ी निद्रा को भी हटाता हूँ। निजघर की सभी सखियों को भी एक ही साथ जगाऊँगा और अंत में अक्षर ब्रह्म को भी उठाऊँगा ।।२।।

जब मूल प्रकृति जन्य सभी प्राकृत वस्तुएँ महाप्रलय में नाश हो जायेंगी, तब इस अद्वैत के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह जायेगा। एक मात्र यह अद्वैत मण्डल ही शेष रह जायेगा, जहाँ धनी श्री राजश्यामाजी और द्वादश सहस्र अंगरूपी सखियाँ निरंतर रहा करतीं हैं ।।३।।

अब इसी की रटना लगाये रहूँगा। यह प्रेम मैं अपने सभी साथियों-संगियों को भी पिलाऊँगा। यह प्रेम धीरे-धीरे पिलाकर उन्हें प्रेममद में मदमस्त बना दूँगा और असली आत्माओं के अंग-प्रत्यंग में प्रेमवृद्धि करा दूँगा ।।४।।

धनी धाम देखन की खांत,
सो तो चूभ रही मेरे चित ।
किन विध बन मोहोल मंदर,
देखों धनीजी की लीला अंदर ॥५॥

विलास स्वरूप किन भांत,
बिन देखे क्यों उपजे स्वांत ।
जल जिमी पसू पंखी थिर चर,
सब ठौर और अक्षर ॥६॥

सब शोभा देखों निज नजर,
अपना वतन निज घर ।
धनी केहे केहे चित चढाई,
पर नैनों अजूं न देखाई ॥७॥

तुम दई जो पिया मोहे निध,
सो तो संगियों को कही सब विध ।
और हिरदें जो मोहे चढाई,
सो भी देऊं इनों को द्रढ़ाई ॥८॥

श्री परमधाम सहित प्रियतम के दर्शन करने की चाहना मेरे चित्त में दृढ़ रूप से चूभ-गड़ गई है। श्री धाम के वनों, महलों, मंदिरों की बनावट किस प्रकार की है, वह धाम किस प्रकार की साज-सज्जा, शोभा-सुंदरता से शोभायमान है और उस धाम में श्री प्रियतम की किस प्रकार की लीला-विहार हो रही है, यह सब दर्शन करके मैं मेरी इच्छा पूरी करूँगा ।।५।।

श्री प्रियतम स्वरूप के साथ का अंतःपुरीय विहार-विलास किस प्रकार का है, यह सब देखे बिना मेरी आत्मा कैसे शांत हो सकती है? वहाँ के जल-जमीन, पशु पक्षी आदि यावत् पदार्थों सहित थिर-चर आदि स्थानीय महत्त्वों की शोभा सुंदरता सहित अक्षर धाम की लीला भी प्रत्यक्ष देखकर उसका वर्णन करना है ।।६।।

उक्त सभी वस्तुओं को निज नजर से देखने की उग्र इच्छा मेरे हृदय में उमड़ रही है। अपने वतन श्री रंगमहल, निजघर के अंदर की जितनी भी बातें हमारे धनी सद्गुरु स्वरूप ने समझा-समझा कर चित्रांकित की हैं, वे सभी बातें मैं आज तक प्रत्यक्ष रूप में अँपनी आँखों से नहीं देख पाया हूँ ।।७।।

हे प्रियतम! आपने मुझे जो धन भेंट में दिया, वह तो मैंने सभी प्रकार से अपनी संगी आत्माओं को समझा-बुझा दिया। मेरे हृदय में अब जो अनुभव उमड़ कर आ रहा है, वह भी मैं अपनी संगी आत्माओं को दृढ़ रूप से निश्चित कर समझा दे रहा हूँ ।।८।।

अब सुनियो साथ सुनाऊं,
पीछे निज नैनों देख देखाऊं ।
जोत जवेर चबूतरे दोए,
ताकी उपमा मुख न होए ॥९॥

द्वार आगे चबूतरे तीन,
दोए दोए तरफ एक भिन ।
दोनों पर नंगों के फूल,
चित निरखे होत सनकूल ॥१०॥

बेलां कै रंगो कै नकस,
देखों एक दूजी पें सरस ।
ता बीच चरनी केती कै रंग,
बेलां कटाव जडित कै नंग ॥११॥

दोऊ तरफ किनारे कांगरी,
कै भांत दोरी नंग जरी ।
दाहिने हाथ भिंन चबूतरा,
ता बीच गली लगता तीसरा ॥१२॥

हे सुन्दरसाथजी! अब सुनिये!! मैं सुना रहा हूँ तथा मैं जो सुना रहा हूँ, उसें मैं तुम्हारे निज नयनों से दिखा भी दूँगा। श्री मूल दरवाजे की दोनों ओर विभिन्न रत्नों से जड़ित मणिमय जोत-प्रकाशपूर्ण अति शोभनीय दो चबूतरे हैं। उस चबूतरे की उपमा इस मुख से नहीं दी जा सकती। अतः कैसे दूँ? ॥९॥

मूल दरवाजे के आगे तीन चबूतरे हैं। दरवाजे के दोनों ओर के दो चबूतरे एक ही प्रकार के हैं, तो नीचे चाँदनी चौक पर स्थित चबूतरा अलग ही प्रकार का है। ऊपर के दोनों चबूतरों में नग, मणियों के फूल-बेल, बूटी आदि जड़े हुए हैं, जिन्हें देखकर चित्त अतिप्रसन्न हो जाता है ॥१०॥

वहाँ कईयों रंग के बेल-पत्रों की फूल, बूटियाँ एक दिशा में भिन्न-भिन्न रूपेण उत्तरोत्तर सुंदरता पूर्ण शोभनीय हैं। इस चबूतरे के मध्य में कईयों रंगों से रंगित रत्नादि जड़ित बेल-पत्र, फल-फूल आदि बूटियों से युक्त भोम भर की सीढ़ियाँ अत्यंत ही मनमोहक रूपेण शोभनीय है ॥११॥

इस सीढ़ी के दोनों ओर स्थित किनार की काँगरी में नगरत्नों की जरीवाली कईयों दोरियाँ चमक रहीं हैं। दाहिनी ओर का चबूतरा अलग ही प्रकार से बना हुआ है। इस चबूतरे के सामने गली (सीढ़ी के सामने स्थित आगे का रास्ता) आयी है ॥१२॥

ऊपर दरखत छाया बराबर,
सब रही चबूतरे भर।
चारों तरफों तीन तीन चरनी,
किनारे की सोभा जाए न बरनी ॥१३॥

उज्वल भोम को कहा कहूं तेज,
जानो बीच चमके रेजारेज।
ए जोत आसमान लों करत,
जोत आसमान सामी लरत ॥१४॥

सो परे बन पर झलकार,
जोत बन की न देवे हार।
इन मंदिरों को जो उजास,
सो तो मावत नहीं आकास ॥१५॥

जोत तेज प्रकास जो नूर,
सब ठौरों सीतल सत सूर।
जोत रोसन भर्‌यो आसमान,
किरना सके न कोई काहूं भांन ॥१६॥

इस समचौरस चबूतरे में बीच के वृक्ष ने चारों ओर बराबर-एक समान छाया डाली है। वृक्ष की छाया ने चबूतरे को ढँक दिया है। चबूतरे की चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ हैं। चबूतरे के चारों किनार की शोभा अवर्णनीय है ।।१३।।

चाँदनी चौक प्रांगण में बिछे हीरे सदृश बालूकणों के तेज-प्रकाश के बारे में क्या कहूँ? उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानो महीन-महीन कणों के कण-कण बिजली के समान चमक रहे हों। इनकी चमकती हुई ज्योति आसमान तक पहुँचकर पुनः लौटकर दूसरी ज्योति के साथ टकरा कर जंग कर रहीं हैं ।।१४।।

इन ज्योतों के प्रकाश की झलक सामने स्थित वन बगीचों पर पड़ रही है। पुनः वन की ज्योति-प्रकाश के साथ टकराकर भी हार नहीं मानती। सामने रंगमहल के मंदिर की जो तेजपूर्ण ज्योति-प्रकाश है, ये जोत-प्रकाश आकाश में नहीं समा रही है ।।१५।।

ये तेजोमय तेज, जोत, प्रकाश सर्व ओर सूर्य की तरह व्यापक है और सच्चे आनन्दजन्य शीतलतादायक है। इस प्रकाशपूर्ण ज्योत से सारा आसमान परिपूर्ण है। ये किरणें परस्पर एक दूसरे को परास्त नहीं कर पातीं ।।१६।।

सोभा क्यों कहूं या मुख बन,
सो तो होए नहीं बरनन ।
इत सब तत्वों की खुसबोए,
सो इन जुबां बरनन क्यों होए ॥१७॥

इत जल वाए के चलत जो पूर,
सो मैं क्या कहूं ताको नूर ।
जल के जो उठत तरंग,
ताकी किरना देखावे कै रंग ॥१८॥

चांद सूरज धनी के हजूर,
सो मैं क्या कहूं ताको नूर ।
इत जमुनाजी के सातों घाट,
मध्य का जल जो बीच पाट ॥१९॥

तापर देहुरी एक,
जल पर पाठ कठेडा विसेक ।
चारों थंभों के जो नंग,
झलके माहें जल के तरंग ॥२०॥

सामने स्थित सातों वनों की शोभा सुन्दरता का इस मुख से कैसे वर्णन करूँ? इनका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ के सभी तत्त्वादि खुशबूदार-सुगन्धदायक हैं। उनकी शोभा सुन्दरता अनुसार खुशबूदार गुणों का वर्णन इस जिह्वा से कैसे करूँ? ॥१७॥

यहाँ जल और वायु की चलती बहारों की प्रकाशित शोभा तथा सुन्दरता के विषय में क्या कहूँ ? पानी में तरंगें उठ रही हैं और उनकी किरणों में कईयों रंग प्रकाशित हो रहे हैं। इन रंगों के प्रकाश का वर्णन मैं किस तरह करूँ? ॥१८॥

यहाँ के सूर्य तथा चंद्र दोनों ही श्री प्रियतम के सेवक के रूप में हैं। इनके प्रकाश के विषय में मैं क्या कहूँ ? श्री यमुनाजी की पश्चिमी ओर जो सात वन-बगीचे हैं, इनके मध्य में पाट का घाट है। दोनों तरफ के पाट घाटों के मध्यस्थ भाग में श्री यमुनाजी बह रही हैं ॥१९॥

यहाँ अत्यंत मनोहर देहुरी बनी हुई है। इस देहुरी में नीचे छत पट कर कमर भर पानी भरा है और चारों ओर कठेड़ा झलझलाकार रूपेण शोभायमान है। चार थंभों में जड़े हुए नगों-मणियों का प्रकाश नीचे जल की तरंगों में झिलमिला रहा है ॥२०॥

आडे ऊंचे याके तले,
चार चार थंभ तीन तीन घडनाले !
याकी जोत आकास न मावें,
किरना फेर फेर जिमी पर आवें ॥२१॥

तिनथें तीन घाट तरफ बाएं,
ताकी जुदी तीनों बनराए ।
बन बडा इनथें भी बाएं,
पिया सैयां खेलन कबूं कबूं जाएं ॥२२॥

लंबी डारी ऊंचा बन,
कै भांत हिंडोले झूलन ।
तीन घाट कहे सो देखाऊं,
सुनो तीनों बनों के नाऊं ॥२३॥

केल लिबोई और अनार,
और तीन बन दांहिनी किनार ।
बट नारंगी जांबू बनराए,
पाट के घाट अमृत केहेलाए ॥२४॥

पाट घाट के नीचे पानी की प्रवाहें-लहरें आड़ी, ऊँची, सीधी तथा तिरछी होकर चार थंभों के बीच स्थित तीन-तीन घड़नालों में होकर बह रही हैं। इन लहरों की ज्योति-प्रकाश आकाश में नहीं समा पा रही हैं। ये किरणें बारंबार नीचे जल से आकाश में जा रही हैं, पुनः आकाश से लौटकर जमीन पर आ रही हैं ।।२१।।

इससे बायीं ओर तीन घाट-वन हैं। ये तीनों ही वन भिन्न भिन्न शोभाओं से युक्त शोभायमान हैं। इस वन की भी बाँईं ओर बड़ावन शोभनीय है। यहाँ धनी प्रियतम सर्व सखी समुदाय सहित कभी-कभी खेलने तथा विहार करने जाया करते हैं ।।२२।।

यहाँ के वन में अलग-अलग वृक्ष हैं और वृक्षों की लंबी-लंबी डालियाँ तथा पत्ते झुम रहे हैं। इन डालियों में कईयों प्रकार के हिंडोले झूल रहे हैं। अभी ऊपर मैंने जो तीन वन बताए, वे वन दिखाता हूँ। उन तीनों वनों के नाम सुनो ।।२३।।

पाट घाट की बाँईं ओर किनार में केले का बगीचा है। केले के बगीचे के बाद नींबू का बगीचा है और नींबू के बगीचे के बाद दाड़िम का बगीचा है। दायीं ओर किनार में वट का, संतरा का और जामुन का बगीचा है। दोनों ओर के इन छः वनों के बीच में आम का बगीचा है। आम के वन को पाट घाट भी कहा जाता है ।।२४।।

जल पर डारें लगियां आए,
दूजियां भोम तरफ सोभाए ।
जमुनाजी के दोऊ किनारें,
बन जल पर लगी दोऊं हारें ॥२५॥

आधी आध हुइयां डारें,
वन रंग सोभित दोऊं पारें ।
आगे वन के जो मंदर,
ताको बरनन करूं क्यों कर ॥२६॥

वेलियां वन चढियां इन सूल,
हुइयां दिवालें पात फूल ।
गृद चारों तरफों फूले फूल रंग,
जुदी हारें सोभे जिन संग ॥२७॥

इत लता चढियां अति घन,
ऊपर फूलों के फूले हैं बन ।
जानों जवेर रंग अनेक,
कुंदन में जडे विवेक ॥२८॥

सातों वनों के पूर्व किनार में स्थित डालियाँ तथा पत्ते आदि श्री यमुनाजी के जल के ऊपर झूल रहे हैं और पश्चिमी किनार की दूसरी भोम धाम दिवाल में शोभनीय रूपेण लटक रहीं हैं। श्री यमुनाजी के दोनों किनारों का पानी, दोनों ओर से आये हुए वृक्षों की डालियों से ढँक गया है ।।२५।।

श्री यमुनाजी के दोनों किनारों का आधा-आधा भाग पानी में तथा आधा-आधा भाग वृक्षों की डालियों द्वारा पड़ी छाया (सवा सौ-सवा सौ मंदिर की चौड़ाई) से ढँक गया है। दोनों पालों पर सात-सात रंग के वन शोभनीय हैं। इन वनों के दोनों ओर सामने स्थित अक्षर धाम और परमधाम मंदिरों की शोभा का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ? ।।२६।।

इन वनों की डालियों तथा प्रशाखाओं के बेल-पत्र, फल-फूलादि दोनों धामों की दिवालों में सघन मात्रा में लटक रहे हैं। श्री रंगमहल के चारों ओर विभिन्न रंगों के फूल ही फूल शोभायमान हैं। भिन्न-भिन्न फूल-पत्ते आदि विभिन्न पंक्तियुक्त सुशोभनीय हो रहे हैं ।।२७।।

इनमें बेल-पत्र आदि के झुंड के झुंड सघन होकर लटक रहे हैं। इनके ऊपर खिले हुए अनेकों फूलों के झुंड बगीचे सदृश दिखाई देते हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानों अनेकों प्रकार की रंग-बिरंगी रत्न-मणियाँ युक्तियुक्त रूपेण सोने में जड़ी हुई हों ।।२८।।

बीच जमुनाजी के और मंदर,
अति बन सोभित बन के अंदर ।
कै सेज्या बनी फूल बन में,
कै रंग हुए सघन में ॥२९॥

इत खेलत जुथ सैयन,
सदा आनंद इन वतन ।
मिनें राज स्यामाजी दोए,
सुख याही आतम सब कोए ॥३०॥

पेड जुदे जुदे लंबी डारी,
छाया घाटी सोभे नीची सारी ।
निकसी एक थें दूजी गली,
सो तो तीसरी में जाए मिली ॥३१॥

कै आवत बीच आडियां,
कै सीधियां कै टेढियां ।
बन गलियों में बराबर,
ना कहूं अधिक ना छेदर ॥३२॥

श्री यमुनाजी और श्री रंगमहल मंदिर के बीच में स्थित सातों वनों-बगीचों के अंदर भिन्न-भिन्न फलों के वन भी सघन रूप में सुशोभित हैं। कुंज-निकुंज वन में कईयों प्रकार के फूलों की शय्या, सिंहासनादि सर्वत्र स्थानों में कई रंगों में परिपूर्णरूपेण शोभायमान हैं ।।२९।।

यहाँ कुञ्ज-निकुञ्ज वन के बालु, रेत कणों में हम श्री राजश्यामाजी सहित आनन्द लीला-क्रीड़ा किया करते हैं। यह स्थान उस घर की आत्माओं का नित्य आनन्ददायी विलास-क्रीड़ा करने का स्थान है। हम सभी ब्रह्मात्मायें यहाँ श्रीयुगलस्वरूप के साथ आत्मीय सुखपूर्वक हमेशा रहा करती हैं ।।३०।।

बड़ेवन के वृक्षों की जड़ें अलग-अलग हैं। इन वृक्षों की लंबी-लंबी डालियों-पत्रों आदि ने नीचे जमीन के सभी चौकों-घाटियों पर छाया डालकर उन्हें चँदवा सदृश ढँक दिया है। नीचे चौक से एक गली निकलकर, दूसरी गली में जा मिली है। पुनः वे दोनों गलियाँ मिलकर तीसरी गली में मिल गयी हैं ।।३१।।

बीच में कईयों प्रकार की आड़ी गलियाँ आई हैं, तो अनगिनत सीधी और असंख्य टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ निकली हैं। सम्पूर्ण गलियों में इन वनों ने एक समान छाया डाली है। न कहीं सघन है, न कहीं कम और न कहीं से छिद्र-प्लवादि ही दिखाई देते हैं ।।३२।।

ऊपर ढांपियां सारी सनंध,
सोभा बनी जो दोरी बंध ।
तले भोम नजर आवे जेती,
उजल कहा कहूं जोत सुपेती ॥३३॥

जिमी ऊपर तले जो रेती,
जानों तितके बिछाए मोती ।
कहूं अति बारीक कहूं छोटे,
कहूं बड़े बड़े रे मोटे ॥३४॥

कित जानों हीरा कनी,
हर ठौर हर भांत घनी ।
कित दोखूनी तीन चौखूनी,
कित फिरती कहूं गोल बनी ॥३५॥

ये चौक ऊपर से अति उत्तम प्रकार से ढँके हुए हैं। वृक्ष, फल-फूल, पत्ते आदि बंधी हुई डोरी के समान शोभायमान हैं। जमीन में जहाँ तक हमारी नजर पहुँचे, वहाँ तक श्वेत उज्वल ज्योतियों का विस्तार है। उसका वर्णन कहाँ तक करूँ? ॥३३॥

नीचे जमीन पर स्थित चौक में ऊपर चँदवा के समान छत है और नीचे चौक में बालूकण इस तरह शोभायमान हैं कि मानों वहीं-परमधाम के मोतियों की परत-सी बिछी हुई हो, ऐसा क्यों न लगेगा ? प्रत्येक चौक में विभिन्न प्रकार के बालूकण बिछे हुए हैं। किसी में अत्यंत महिन कणों के सदृश, तो किसी में उससे कुछ बड़े, किसी में और बड़े-बड़े, तो किसी में उससे भी बड़े बालूकण मोती के समान उज्वल प्रकाश कर रहे हैं ॥३४॥

किसी चौक में हीरे के कण बिछे हुए हैं, ऐसा दिखाई दे रहा है। भिन्न-भिन्न चौकों में विभिन्न आकार के हीरे सदृश बालूकण बिछे हुए हैं। किन्हीं चौक के बालूकण दो कोने वाले हैं, तो किन्हीं में तीन कोने वाले हैं। किन्हीं में चार कोनेवाले हैं, तो कहीं फिरते गोलदाने सदृश कणों से चौक भरे पड़े हैं ॥३५॥

ए विध कहूं मैं केती,
सो होए न याकी गिनती ।
बन फूल फूले बहु रंग,
झलूब रहे बोए सुगंध ॥३६॥

एक खूबी और खुसबोए,
याकी किन जुबां काहूं मैं दोए ।
एक सुगंध दूजा नूर,
रह्या सब ठौरों भर पूर ॥३७॥

तलाब जमुनाजी के मध,
बन के मंदिर या विध ।
ए खेलन के सब ठौर,
तलाब विध है और ॥३८॥

तलाब बनों लिया घेर,
ऊपर देहुरियां चौफेर ।
कै पावडियां जो किनारें,
बडा चौक तले जाली वारें ॥३९॥

इन चौकों में स्थित विभिन्न प्रकार की शोभा का वर्णन कहाँ तक और कितना बताऊँ ? इन चौकों की गिनती ही नहीं हो सकती है, तो इनकी शोभा या गुण के विषय में क्या कहा जा सकता है ? इन वनों में अनगिनत रंगों के फूल खिले हुए हैं, जिनमें से उत्तरोत्तर महक उमड़ रही है ।।३६।।

इन वनों की शोभा सुन्दरता बताकर पार नहीं पाया जा सकता और न उनमें स्थित सुगन्धादि गुणों का ही पार पाया जा सकता है। इन दोनों विशेषताओं का वर्णन मैं किस जिह्वा से करूँ ? वन-पत्तों आदि के नस-नस में सुगंध और प्रकाश भरा हुआ है। कहीं कोई रत्ती भर की जगह भी खाली नहीं है ।।३७।।

हौज कौसर तलाब और श्री यमुनाजी के मध्य में इस प्रकार के वनों के मंदिर आदि शोभायमान हैं। यहाँ कुञ्ज-निकुञ्ज वनों में खेलने के लिए रमणीय स्थानादि हैं। इस प्रकार हौज कौसर तलाब की शोभा-बनावट अनोखी ही है ।।३८।।

तलाब को बड़ेवन के वृक्षों की पाँच हारों ने घेर रखा है। पाल के ऊपर चारों ओर देहुरियाँ फिरीं हैं। कई सीढ़ियाँ किनार में हैं और पाल के अंदर कई बड़े-बड़े चौक हैं। बाहरी किनार में चारों ओर जालीदार बेरे लगे हुए हैं ।।३९।।

बन लेवत सोभा पालें,
कै हिंडोले लंबी डालें ।
घाट पांट देहुरी कै रंग,
जल सोभा लेत तरंग ॥४०॥

गेहेरा अति सुंदर जल,
बीच में बन्यो है मोहोल ।
जल ऊपर मोहोल जो छाजे,
बीच-बीच में बन बिराजे ॥४१॥

जल मोहोल तले जो खलके,
मंदिर कोट प्रकास मनी झलके ।
बन को झुंड पाल पर एक,
तले सोभा अति विसेक ॥४२॥

झुंड तले सोभा कही न जाए,
धनी इत बिराजत आए ।
धनी बैठत साथ मिलाए,
सब सिनगार साज कराए ॥४३॥

चौरस पाल में बड़ावन अत्यंत शोभनीय है। इनकी लंबी-लंबी डालियों में कईयों हिंडोले लगे हुए हैं। घाट पटे हुए हैं और उन पर कईयों रंगों की देहुरियाँ फिरीं हैं। तलाब में स्थित पानी में विभिन्न तरंगें शोभनीय रूपेण उमंगित हो रही हैं ।।४०।।

इस गहरे तलाब में परिपूर्ण रूपेण अति निर्मूल जल भरा हुआ है और बीच के भाग में महल शोभायमान हैं। पानी के ऊपर स्थित यह टापू महल अनूठी शोभा सुंदरता से युक्त है। इस महल की बाहरी किनार में गुर्ज के बीच-बीच में चारों ओर वन फिरे हुए हैं ।।४१।।

टापू महल की बाहरी ओर नीचे मनोहर स्वर में पानी कलकल कर रहा है और पानी के ऊपर मणिमय प्रकाशयुक्त करोड़ों गुणा मंदिर झिलमिला रहे हैं। सामने स्थित पाल के ऊपर अनेकों वनों से युक्त झुण्ड का घाट शोभायमान है। इस घाट की प्रथम भोम विशेष तथा अतिमनोहर रूप से शोभनीय है ।।४२।।

इस घाट की प्रथम भोम में जो शोभा या विशेषता है, उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ? जहाँ सवारी पर चढ़कर श्री धनीजी आ विराजते हैं। यहाँ श्री प्रियतम सहित सर्व सखियों की बैठक हुआ करती है और आपस में मिलकर सखियाँ एक-दूसरे का साज-सिंगार करती हैं ।।४३।।

इन ठौर सोभा जो अलेखें,
चित सोई जाने जो देखें ।
मध्य बन धाम के गृदवाए,
सोभा एक दूजी पे सिवाए ॥४४॥

बट पीपल निकट बनराए,
सो देख देख न द्रस्ट अघाए ।
ज्यों ज्यों देखिए त्यों त्यों सोभाए,
पेहेले थें पीछे अधिकाए ॥४५॥

फिरते बन धाम विराजे,
ऊपर आए रह्या लग छाजे ।
चारों तरफों फूले फूल वन,
कै रंग सोभा अति घन ॥४६॥

बरन्यो न जाए या मुख,
चित में लिए होत है सुख ।
बन में खेले टोले टोले,
मोर बांदर करत कलोले ॥४७॥

यहाँ की शोभा अपरम्पार है। जो इस शोभा के दर्शन करेगा, उसी का चित्त इस आनन्दजन्य शोभा को धारण कर सकेगा। श्री धाम-मूल मंदिर को मध्य में लेकर चारों ओर वनादि फिरे हैं। एक वन से दूसरा वन अधिकाधिक सुंदरतायुक्त रूप से शोभायमान है ।।४४।।

वट-पीपल के आस-पास जितने भी वन-वृक्ष स्थित हैं, उनकी सुमनोहर शोभा को पुनः पुनः देखने की इच्छा होती है। बार-बार देखने पर भी आत्मा तृप्त नहीं होती। जितनी बार देखो उतनी बार नयी-नयी शोभा दिखाई देती है। पहले बार से दूसरे बार की शोभा अति मनमोहक लगती है ।।४५।।

मध्य भाग में श्री धाम विद्यमान है और चारों दिशाओं में चारों ओर वन फिरे हुए हैं। इनकी डालियाँ-पत्ते आदि धाम दिवाल में सघन मात्रा में लटक रहे हैं। चारों ओर के वनों में विभिन्न रंग-बिरंगे फूल खिले हुए हैं। विभिन्न रंगों के फूलों की शोभा-सुन्दरता अति मनमोहक है ।।४६।।

उक्त सभी शोभा-सुन्दरता का बखान इस मुख से नहीं किया जा सकता। चित्त में धारण करने से अत्यंत सुख प्राप्त होता है। इस वन में झुण्ड के झुण्ड, समुह के समुह मयुर, बंदर आदि सुमनोहर स्वर में विभिन्न खेल-क्रीड़ा कर रहे हैं ।।४७।।

मिल मिल करे टहुंकार,
मुख मीठी बानी पुकार ।
बांदर ठेकों पर ठेक देत,
टेढी उलटी गुलाटें लेत ॥४८॥

तीतर लवा कोकिला चकोर,
सबद वाले सामी टकोर ।
सुआ मैना करे चोपदारी,
चातुरी इन आगे सब हारी ॥४९॥

सखियों के नाम ले ले बुलावें,
श्री धनीजी के आगे मुजरा करावें ।
पंखी पीउ पीउ तुहीं तुहीं करे,
कै विध धनी को हिरदें धरे ॥५०॥

तिमरा भमरा स्वर साधे,
गुंजे गान पियासों चित बांधे ।
मृग कस्तूरियां घेरों घेर,
करे सुगंध बन चौफेर ॥५१॥

आपस में मिलकर टंकार शब्द करते हैं और मुख से मीठे-मधुर वचन कहते हैं। बंदर विभिन्न प्रकार से उछलकर एक जगह से दूसरी जगह पर गुलाटें खाते हैं तथा सीधे-टेढ़े, उल्टे-सुल्टे विभिन्न प्रकार की गुलाटियाँ खाकर उछलते हैं ।।४८।।

तीतर पक्षी तीरी-तीरी करते हैं, तो कोयल कुहू-कुहू स्वर में थिरक रही है। चकोर पक्षी आमने-सामने कुहूक रहे हैं। सुग्गा-तोता तथा मैना पहरेदारी में सतर्क हैं। इनकी चतुराई के आगे सभी परास्त हो गये हैं ।।४९।।

सखियाँ अपने-अपने पशु-पक्षियों का नाम बुलाकर उन्हें श्री धनीजी के आगे उपस्थित करती हैं तथा दर्शन करवाती हैं। ये पशु-पक्षी, कभी-कभी पीऊ-पीऊ जपते हैं, तो कभी-कभी तुँही-तुँही गाते हैं। वे विभिन्न-विभिन्न भाषा में धनी का नाम-गुणगान अलाप रहे हैं ।।५०।।

तिमरा झ्याऊँ-झ्याऊँ स्वर में गुनगुंना रहा है, तो भँवरा भूँ-भूँ के स्वर में भूनभूना रहा है। इस प्रकार अपने-अपने हृदय में धनी का स्मरण करते हुए गुञ्जायमान स्वर में सभी पशु-पक्षी गान कर रहे हैं। हरिन-कस्तूरी मृग चारों ओर वन में सैर कर रहे हैं और उनकी नाभि में स्थित कस्तूरी से सारा वन महक रहा है ।।५१।।

हाथी बाघ चीते सागोश,
खेले मिले आतम नहीं रोस ।
हंस गरुड पंखी कै जात,
नाम लेऊं केते कै भांत ॥५२॥

कै मुरग सुतर कुलंग,
खेल करें लडाई अभंग ।
सीना कस गुलाटें खावें,
कबूतर अपनी गत देखावें ॥५३॥

हरन सांम्हर पस्वाडे पाडे,
खेलें सब आप अपने अखाडे ।
मुजरे को दोऊ समे आवें,
खेल सब कोई अपना देखावें ॥५४॥

पसु पंखी अनेक हैं नाम,
सोभे केसों पर चित्राम ।
अति सुंदर जोत अपार,
याके खेल बोल मनुहार ॥५५॥

हाथी, बाघ, चीता, सागोश आदि हिंसक प्राणी भी आत्मीय प्रेम में डूबकर खेल रहे हैं। किसी में भी ईर्ष्या या द्वेष की भावना नहीं है। हंस, गरूड़ आदि कईयों जाति के पक्षी हैं। इनमें से कितने पक्षियों के नाम लूँ और कहाँ तक लूँ ? विभिन्न प्रकार के पक्षी यहाँ हैं ।।५२।।

विभिन्न प्रकार के पंखोंवाले मुर्ग, सुतर, कुलंग आदि पक्षी जिस तरह सचमुच की लड़ाई करते हैं, उसी प्रकार प्रेममय क्रीड़ा कर रहे हैं। ये पक्षी पूर्ण तैयारी के साथ छाती तानकर, कमर कसकर छलाँग लगाते हैं। कबूतर अपने ही प्रकार से नाच-गान और कला दिखाते हैं ।।५३।।

इन वनों में अनेकों प्रकार के विभिन्न नाम वाले पशु-पक्षी हैं। इनके रंग-रूप, केशों-रोंमों पर चित्रित शोभा अकथनीय है तथा अपार ज्योत-प्रकाश से पूर्ण हैं। ये मनोहर बोली बोलते हुए मनमोहक क्रीड़ा कर रहे हैं ।।५४।।

हरिन, गाय, भैंस, बछड़े ये सभी पशु-जानवर अपने-अपने अखाड़ों में खेल रहे हैं। ये सभी पशु-जानवर दिन में दो बार श्रीराजजी के दर्शन करने चाँदनी चौक में उपस्थित होते हैं और अपने-अपने कलापूर्ण खेलों का प्रदर्शन करते हैं ।।५५।।

जमुनाजी के जो पार,
बन पसू पंखी याही प्रकार ।
मोहोल सामी सोभे मोहोल,
सो मैं क्यों कहूं या मुख कोल ॥५६॥

दरवाजे सामी दरवाजे,
नूर सामी नूर बिराजे ।
नूर किरना उठे साम सामी,
जोत रही सबों ठौर जामी ॥५७॥

लीला दोऊ दोनों ठौर,
भांत दोऊ पर नाहीं और ।
फिरते अक्षर के जो बन,
लीला एकै देखियत भिंन ॥५८॥

कै मिलावे सोहने,
धनी सैयों के खिलौने ।
पसू पंखी जुथ मिलत,
आगे बडे दरवाजे खेलत ॥५९॥

श्री यमुनाजी के उस (अक्षर धाम के तरफ) पार के वन-बगीचों में भी इसी प्रकार के वन, पशु-पक्षी हैं। श्री परमधाम के सामने अक्षर धाम शोभायमान है। यहाँ के पशु-पक्षियों की आवाज विभिन्न मधुरता पूर्ण बोली का वर्णन इस मुख से किन शब्दों में तथा कैसे करूँ? ।।५६।।

श्री रंगमहल के मूल दरवाजे के सामने अक्षर धाम का मूल दरवाजा है और किशोर स्वरूप के सामने बालस्वरूप विराजमान है। इन दोनों स्वरूपों सहित महल, वन-बगीचे आदि को आमने-सामने की ज्योतों तथा प्रकाशों ने ढँक दिया है ।।५७।।

इन दोनों महलों में दो प्रकार की लीलायें हैं-बाललीला और किशोर लीला। इन दोनों से भिन्न कोई तीसरी लीला नहीं है। अक्षर धाम के चारों ओर जो वनादि हैं, वहाँ के क्रीड़ा स्थल एक ही प्रकार के हैं। केवल वहाँ लीला मात्र ही भिन्न अर्थात् बाललीला है ।।५८।।

ये कईयों प्रकार की सुन्दर शोभायमान सामग्रियाँ श्री धनी-प्रियतम और समस्त सखियों के लीला विलासी साधन हैं। झुण्ड के झुण्ड पशु-पक्षी विशाल मूल दरवाजे के आगे स्थित चौक में खेलते हैं ।।५९।।

दोऊ कमाड रंग दरपन,
माहें झलकत सामी बन ।
नंग बेनी पर देत देखाई,
ए सोभा कही न जाई ॥६०॥

कै कटाव नकस जवेर,
सोभित नंग चौक चौफेर ।
फिरते द्वारने जो मनी,
ताकी जोत प्रकास अति घनी ॥६१॥

याके तीन तरफ जो दिवाल,
कै जवेर भोम रंग लाल ।
गोख खिडकी जाली जवेर,
कै जडाव दिवाल चौक चौफेर ॥६२॥

गृद झरोखे के थंभ फिरते,
जुदी कै जिनसों जोत धरते ।
नव भोम रंग बरनन,
तापर खुली चांदनी उठत किरन ॥६३॥

मूल दरवाजे में दर्पण रंग के दो किवाड़ हैं। किवाड़ के इस दर्पण में सामने स्थित सातों वन झिलमिला रहे हैं। दरवाजे के किवाड़ के प्रत्येक खानों में स्थित डांडों में नग-रत्नादि जड़े हुए हैं। इन रत्न-मणियों की शोभा अकथनीय है ।।६०।।

कईयों प्रकार के रत्न-मणियों, जवाहरातों की अनगिनत बेल-बूटियाँ दरवाजे के किवाड़ में बने चौकों में चारों ओर शोभायमान हैं। दरवाजे के चारों ओर जो रत्नादि नग हैं, उन नगों में से अत्यंत तेजयुक्त ज्योतिर्मय प्रकाश निकल रहा है ।।६१।।

मूल दरवाजे के तीनों ओर की दिवालों में कईयों जवाहरातों के फूल, बूटियाँ आदि प्रत्येक भोम में जड़े हुए हैं। दरवाजे की हाँस प्रत्येक भोम में लाल वर्ण की ही है। अंदर स्थित जालीदार खिड़कियों के चारों ओर की दिवालों, चौकों, थंभादि में विभिन्न प्रकार के रत्नादि जड़े हुए हैं ।।६२।।

नवों भोमों में बाहरी झरोखे की हद पर चारों ओर थंभ फिरे हुए हैं। यहाँ अलग प्रकार की बनावट युक्त छज्जा प्रकाशित है। इस भोम के रंगादि का क्या वर्णन करूँ ? यहाँ से लेकर ऊपर खुली चाँदनी तक अनेकों किरणों का प्रकाशपुञ्ज परिपूर्ण रूपेण शोभनीय है ।।६३।।

मंदिर याकी कांगरी करे जोत,
जानों तहां की बीज उदोत।
दरवाजे में ठौर रसोई,
जित बडा मिलावा नित होई ॥६४॥

स्याम मंदिर रसोई होत जित,
जोडे सेत मंदिर है तित।
बन थें फिरें संझा जब,
इन मंदिरों आरोगे तब ॥६५॥

चरनी आगे मिलावा होत,
जुथ लाडबाई धरे जोत।
साक बांदर जो ल्यावत,
आगे सखियां सब समारत ॥६६॥

कै चौक चबूतरे अंदर,
कै विध गलियां मंदर।
कै जडाव दिवाल द्वार जोत धरे,
ए जुबां बरनन कैसे करे ॥६७॥

श्री धाम के मंदिर में चारों ओर स्थित काँगरी में से निकलती ज्योत के ज्योतिर्मय तेज को देखने पर ऐसा लगता है, मानो वहीं-परमधाम की बिजली चमक रही हो। मूल दरवाजे के सामने स्थित रसोई के चौक में भोजन के लिए दैनिक विशाल मिलावा होता है ।।६४।।

इस चौक के उत्तर दिशा में स्थित श्याम वर्ण के मंदिर में रसोई-भोजनादि बनता है। इसी के बाजू में श्वेत मंदिर है। संध्या के समय जब वन से सैर-लीला करके लौटते हैं, तब इस मंदिर में भोजन लीला होती है ।।६५।।

श्याम-श्वेत के बीच के मंदिर में भोम भर की सीढ़ी के सामने भोजन के लिए पंगत बैठती है। लाड़बाई की जुत्थ भोजन परोसने में मस्त है। बंदर साग-सब्जी लाकर आगे रखते हैं तथा सखियाँ उन्हें सँवारती हैं ।।६६।।

रंगमहल के अंदर कईयों चौक, चबूतरे, मंदिर और गलियाँ विद्यमान हैं। विभिन्न प्रकार से जड़ित प्रकाश पूर्ण दिवाल और दरवाजे द्वारा प्रकाशित ज्योत-प्रकाश का वर्णन इस जिह्वा से कैसे, किस प्रकार किया जा सकता है? ।।६७।।

कै नकस पुतली चित्रामन,
कै बेल पसू पंखी बन ।
कंचन कडे जंजीरां जडियां,
कै झलकें थंभ सिढियां ॥६८॥

माहें बस्तां संदूक जोगबाई,
सो तो अगनित देत देखाई ।
ताके खिल्ली किनारे भमरिया,
ऊपर बस्तां अनेक विध धरियां ॥६९॥

ए मैं क्यों कर करूं बरनन,
तुम लीजो कर चितवन ।
नव भोम सबों के मंदर,
देखो बस्तां अपनी चित धर ॥७०॥

सेज्या सबन के सिनगार,
हिरदें लीजो कर निरधार ।
सब जोगबाई है पूरन,
कमी नाहीं काहूंमें कीन ॥७१॥

उन पर अनगिनत बेल-बूटियाँ, पुतलियाँ आदि के चित्रादि चित्रित हैं और कईयों वन, वृक्ष, पशु, पक्षियों के चित्रों की नक्काशी जड़ी हुई है। सोने के कड़े और जड़ावदार जंजीरों सहित हिंडोले तथा कईयों थंभ तथा सीढ़ियाँ झलझलाकार रूपेण शोभायमान हैं ॥६८॥

प्रत्येक मंदिर-कोठे के अंदर विभिन्न सामग्रियाँ बक्से, सन्दूक, कंतुरादि अनगिनत मात्रा में भरे हुए दिखाई देते हैं। तख्ते, दराजादि-अलमारियों में तथा किनार में बने गोखों के ऊपर अनेकों वस्तुएँ धरी हुई हैं ॥६९॥

इन सबका वर्णन कैसे करूँ ? हे ब्रह्मात्माओं! तुम स्वयं ध्यान-चिंतन द्वारा इसे ग्रहण करो। नवों भोमों की प्रत्येक भोमों में अपने-अपने मंदिर-कोठे, कहाँ-कहाँ, कैसी-कैसी सामग्रियों से युक्त हैं, इन बातों को अपने चित्त में चिन्तन द्वारा धारण करो ॥७०॥

हे ब्रह्मात्माओं! अपनी-अपनी शय्या-पलंग और श्रृंगार के मंदिरों को निश्चित कर हृदय में ग्रहण करो। जहाँ हमारी सभी प्रकार की सामग्रियाँ रखी हुई है, जहाँ किसी भी प्रकार की कोई भी वस्तुओं की कमी नहीं है ॥७१॥

हांस बिलास सनेह प्रेम प्रीत,
सुख पियाजी को सबदातीत ।
डबे तबके सीसे सिकीयां,
कै देत देखाई लटकतियां ॥७२॥

चौकियां माचियां सिंहासन,
कै हिंडोले जंजीर कंचन ।
कै बासन धात अनेक,
कै बाजंत्र विविध विसेक ॥७३॥

कै झीले चाकले दुलीचे बिछौनें,
कै विध तलाई सिरानें ।
कै रंग ओछाड गालमसुरे,
कै सिरख सोड मन पूरे ॥७४॥

सेज्या सिनगार के जो भवन,
दोए दोए नवों खंड सबन ।
दूजी भोम किनारे बाएं हाथ,
कबूं कबूं सिनगार करें इत साथ ॥७५॥

हम लोग कैसे हाँस-विलास में, स्नेह से प्रेमभाव सहित प्रियतम के शब्दातीत सुख-आनन्द में थे ? वे सभी साधन-सामग्रियाँ जैसे डब्बे-तबके, बोतल-शीशियाँ आदि रखे हुए तथा लटकाए हुए वैसे के वैसे, वहीं के वहीं हैं ।।७२।।

हमारी चौकियाँ-माचियाँ, कुर्सी-सिंहासनादि, सोने के साँकलदार कईयों हिंडोले तथा विभिन्न धातुओं से निर्मित पात्र आदि वैसे के वैसे ही विद्यमान हैं। तरह-तरह की विशेष वाद्य सामग्रियाँ बाजे-गाजे आदि जैसे के तैसे वहीं हैं ।।७३।।

अनेकों प्रकार के झीले, चाकले, गलीचे आदि बिछौने, कईयों रंग-बिरंगे गद्दे, तकिये, विभिन्न रंग के ओछाड़-तौलिये, पलंग, चादर, गाल मुसरी, सिरक-गद्दे पूर्णात्पूर्ण रूप से विद्यमान हैं ।।७४।।

शयन करने की शय्या-पलंग, सिंगार करने के मंदिर-कोठे आदि प्रत्येक सखी के लिए नवों भोम में दो-दो हैं। दूसरी भोम की बायीं ओर किनार पर स्थित खड़ोकली में स्नान कर हम वहाँ कभी-कभी सिंगार किया करते थे ।।७५।।

इत खडोकली जल हिलोलें,
धनी साथ झीलें झकोलें ।
इत सिनगार करके खेलें,
ठौर जुदे जुदे जुथ मिलें ॥७६॥

साम सामी मंदिरों के द्वार,
नव भोम फिरती किनार ।
ता बीच थंभों की दोए हार,
कै रंग नंग तेज अपार ॥७७॥

जेती मैं कही जोगबाई,
सो देख देख आतम न अघाई ।
या बाहेर या अंदर,
सब एक रस मोहोल मंदर ॥७८॥

केहेती हों करके हेत,
सारे दिन की एही विरत ।
तुम लीजो द्रढ कर चित,
अपना जीवन है नित ॥७९॥

यहाँ खड़ोकली-जलाशय में पानी की तरंगें उठ रहीं हैं। इस जलाशय में श्री प्रियतम के साथ हम सभी सखियाँ स्नान कर विभिन्न प्रकार से जल में जलक्रीड़ा किया करते थे। कभी-कभी हम सिंगार करके खेला करते थे, तो कभी-कभी खेलने के बाद सिंगार किया करते थे और अलग-अलग जुत्थ मिलकर बैठा करते थे ।।७६।।

मूल मंदिर-रंगमहल के अंदर नवों भोमों में बाहरी किनार के दो हार मंदिरों के दरवाजे आमने-सामने गोलावृत फिरे हैं। इनके मध्य में स्थित थंभों की दो हारें और उन थंभों आदि में जड़ित रत्न, मणियाँ, जवाहरात अपार प्रकाश कर रहे हैं ।।७७।।

मैंने उक्त जितनी भी वस्तुओं या सामग्रियों का वर्णन किया, उन्हें देखकर तथा वर्णन सुन कर हमारी आत्मा कभी तृप्त नहीं हो सकती। यदि बाहर की सामग्रियों के दर्शन से ही आँखें तृप्त नहीं होती, तो अंदर की सामग्रियों के दर्शन से ये आँखें कैसे तृप्त हो सकती हैं ? अंदर तथा बाहर दोनों ही स्थानों के महल-मंदिर आदि सभी सामग्रियाँ एक समान अतृप्त शोभादायक हैं ।।७८।।

निजघर-स्वघर की आत्माओं के प्रति स्नेह-प्रेमपूर्वक बताती हूँ। ये हमारी सम्पूर्ण दिन की दिनचर्या है। हे संबंधी आत्माओं! तुम लोग इसे अपने चित्त में दृढ़ रूप से धारण कर लो, इसे मत छोड़ो। ये हमारे जीव के जीवन स्वरूप, आत्मीय-आत्माधार हैं ।।७९।।

❊ मूल मिलावा ❊

इन विध साथजी जागिए,
बताए देऊं रे जीवन ।
स्याम स्यामाजी साथजी,
जित बैठे चौक वतन ॥१॥

याद करो सोई साइत,
जो हंसने मांग्या खेल ।
सो खेल खुसाली लेय के,
उठो कीजिये अब केल ॥२॥

सुरत एकै राखिए,
मूल मिलावे मांहिं ।
स्याम स्यामाजी साथजी,
तले भोम बैठे हैं जांहिं ॥३॥

चौसठ थंभ चबूतरा,
इत कठेडा विराजत ।
तले गिलम ऊपर चंद्रवा,
चौसठ थंभों भर इत ॥४॥

❊ भावार्थ ❊

हे सुन्दरसाथजी! अपनी आत्मा को इस प्रकार जागृत कीजिए। हमारी आत्मा का जीवन स्वरूप बताता हूँ कि ''श्री युगलस्वरूप - श्यामश्यामाजी सहित हमारा परात्मा स्वरूप जहाँ जिस घर के चौक में बैठा है, उस मूल मिलावे की बैठक को ध्यान में रखिए ।।१।।

उस मुहूर्त को याद कीजिए, जिस समय हमने सुखी होकर, हँसी करने के लिए, हँसने के लिए खेल माँगा था। अब इस खेल की खुशहाली लेकर, खेल में से आत्म जागृत कर उठना है तथा जागृत अवस्था के आचरण में परिणत होना है ।।२।।

अपनी सूरता (चित्तवृत्ति) को सर्वभावेन एक मूल-मिलावे में ही लगाइये, जहाँ श्री निजधाम की प्रथम भोम की गोल हवेली में श्री श्याम-श्यामाजी सहित हम द्वादश सहस्र सखियाँ खेल देखने बैठी हैं ।।३।।

हम खेल देखने के लिए जिस मूल मिलावे मैं बैठे हैं, उस बैठक के चबूतरे में चारों ओर चौंसठ थंभ हैं और थंभों के साथ-साथ कमर भर ऊँचा कठेड़ा लगा हुआ है। नीचे सुंदर गलीचा बिछा हुआ है और ऊपर चँदवा टँगा हुआ है अर्थात् चौंसठ थंभों से आवृत इस चौक में नीचे गलीचा और ऊपर चँदवा शोभायमान है ।।४।।

कठेडा किनार पर,
चबूतरे गृदवाए ।
सोले थंभों लगता,
ए जुगत अति सोभाए ॥५॥

चार द्वार चारों तरफों,
और कठेडा सब पर ।
चौसठ थंभों के बीच में,
गिलम बिछाई भर कर ॥६॥

कहूं चौसठ थंभों का बेवरा,
चार धात बारे नंग ।
बने चारों तरफों जुदे जुदे,
भए सोले जिनसों रंग ॥७॥

चारों तरफों एक एक रंग के,
तैसी तरफों चार ।
नए नए रंग एक दूजे संग,
चारों तरफों चौंसठ सुमार ॥८॥

चबूतरे की किनार में चारों ओर कठेड़ा लगा हुआ है। चबूतरे की किनार में चारों दिशाओं पर दरवाजे को छोड़कर सोलह-सोलह थंभ चबूतरे से लगे हुए अत्यंत युक्तियुक्त रूपेण फिरे हुए शोभायमान हैं ।।५।।

चौक के चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं। दरवाजे को छोड़कर चारों ओर कठेड़ा लगा हुआ है। चौंसठ थंभों से आवृत चौक के बीच में सुंदर चित्रों से चित्रित गलीचा बिछा हुआ है ।।६।।

अब मैं चौंसठ थंभों का वर्णन करता हूँ। चौंसठ थंभ चार धात और बारह नगों के बने हुए हैं। चारों ओर भिन्न-भिन्न रंग के थंभ शोभायमान हैं। इन नगों और धातुओं के कुल सोलह रंग चारों ओर के थंभों में झिलमिला रहे हैं ।।७।।

चार दिशाओं के चारों दरवाजों के बीच में जिस तरह एक-एक रंग के अलग-अलग थंभ विद्यमान हैं, उसी तरह गिर्द की चारों खाँचों में भी शोभायमान हैं। इस प्रकार क्रमशः प्रत्येक खाँच में नये-नये रंग के अलग-अलग थंभ शोभायमान हैं। इस तरह चारों ओर कुल चौंसठ थंभ हैं ।।८।।

ए चार नाम कहे धात के,
हेम कंचन चांदी नूर ।
ए चार रंग का बेवरा,
लिए खडे जहूर ॥९॥

और बारे जवेरों का बेवरा,
पाच पांने हीरे पुखराज ।
मानिक मोती गोमादिक,
रहे पिरोजे विराज ॥१०॥

नीलवी और लसनियां,
और परवाली लाल ।
और रंग कपूरिया,
ए रंग बारे इन मिसाल ॥११॥

चार द्वार चार रंग के,
आठ थंभ भए जो इन ।
पाच मानिक और नीलवी,
द्वार पुखराज चौथा रोसन ॥१२॥

इनमें से चार नाम धातु के हैं। जैसे-हेम, कंचन, चाँदी तथा नूर इन चारों धातुओं के थंभ अपने-अपने रंगों सहित जाज्वल्यमान रूपेण प्रकाशित हो रहे हैं ।।९।।

शेष बारह प्रकार के जवेरों (जवाहरातों) के नाम इस प्रकार हैं। पाच, पन्ना, हीरा, पुखराज, माणिक, मोती, गोमादिक और पिरोजा। इन आठ प्रकार के रत्न-मणियों (जवेरों) के आठ थंभ हुए ।।१०।।

चार थंभ नीलवी (नीलमणिका), लहसुनिया, प्रवाल (परवाल) और कपूरिया रंग के शोभायमान हैं। इस तरह कुल बारह रंगों से युक्त बारह नगों के थंभ भिन्न-भिन्न प्रकार से शोभायमान हैं ।।११।।

चारों दिशाओं में विद्यमान चार दरवाजों में जो चार रंग के आठ थंभ हैं, उन आठों थंभों में चार रंग हैं। ये आठों थंभ पाच, माणिक, नीलवी और पुखराज इन चार प्रकार के नगों के रंग में प्रकाशमान हो रहे हैं ।।१२।।

और थंभ दोए पाच के,
दोऊ तरफों नीलवी संग ।
द्वार नीलवी संग दोए पाचके,
करें साम सामी जंग ॥१३॥

दो थंभ द्वार मानिक के,
दोए पुखराज तिन पास ।
दो थंभ द्वार पुखराजके,
ता संग मानिक करे प्रकास ॥१४॥

थंभ बारे भए इन विध,
साम सामी एक एक ।
यों बारें बने साम सामी,
तरफ चारों इन विवेक ॥१५॥

हीरा लसनियां गोमादिक,
मोती पांने परवाल ।
हेम चांदी थंभ नूर के,
थंभ कंचन अति लाल ॥१६॥

पूर्व स्थित दरवाजे में दो थंभ पाच नग के हैं। पूर्व दरवाजे के दोनों ओर के दो थंभ नीलवी नग के हैं। पश्चिम दरवाजे में दो थंभ नीलवी के हैं और इस दरवाजे के दोनों ओर के दो थंभ पाच नग के हैं। इन थंभों से निकलता प्रकाश आमने-सामने होकर जंग कर रहा है ।।१३।।

दक्षिण दिशा में स्थित दरवाजे में दो थंभ माणिक के हैं। इस दरवाजे के दोनों तरफ दो थंभ पुखराज के हैं। उत्तरी दरवाजे में दो थंभ पुखराज के हैं। इस दरवाजे की दोनों तरफ माणिक के दो थंभ प्रकाशयुक्त शोभायमान हैं ।।१४।।

इस प्रकार बारह नगों के बारह थंभ हुए। ये सभी थंभ एक-दूसरे के आमने-सामने शोभायमान हैं। इस प्रकार बारह नगों (रत्न-मणियों) के बारह रंग के थंभ चारों ओर आमने-सामने विवेकपूर्ण रूपेण शोभायमान हैं ।।१५।।

थंभ क्रमशः इस प्रकार हैं। जैसे-हीरा, लहसुनिया, गोमादिक, मोती, पन्ना, प्रवाल, हेम, कंचन, चाँदी और नूर। जिनमें से कंचन धातु का थंभ अत्यंत लाल वर्ण लिए शोभायमान है ।।१६।।

पिरोजा और कपुरिया,
याके आठ थंभ रंग दोय ।
गिन छोडे दोए द्वार से,
बने हर रंग चार चार सोय ॥१७॥

ए सोले थंभों का बेवरा,
थंभ चार चार एक रंग के ।
सो चारों तरफों साम सामी,
बने मिसल चौसठ ए ॥१८॥

चारों तरफों चंद्रवा,
चौसठ थंभों के बीच ।
जोत करे सब जवेरों,
जेता तलें दुलीच ॥१९॥

माहें वृख बेली कै कटाव,
कै फूल पात नकस ।
देख जवेर जुगत कै चंद्रवा,
जानों के अति सरस ॥२०॥

उक्त दस थंभों सहित क्रमशः पिरोजा और कपूरिया इन दोनों नगों के थंभों को मिलाकर एक खाँच में कुल बारह थंभ विद्यमान हैं। दो दरवाजों के आठ थंभ दो रंगों के हैं। एक दरवाजे से लेकर दूसरे दरवाजे तक गिनती करके छोड़ दीजिए। चारों ओर गिर्द में प्रत्येक रंग के चार-चार थंभ दिखाई देते हैं ।।१७।।

इस प्रकार सोलह थंभों का वर्णन हुआ। एक-एक रंग के चार-चार थंभ हैं। इस प्रकार ये चौंसठ थंभ चारों ओर आमने-सामने प्रकाशवंत रूपेण शोभायमान हैं ।।१८।।

थंभों के ऊपर चारों ओर बीच के भाग में चँदवा शोभायमान है। चारों दिशाओं में शोभायमान थंभों में से निकलते ज्योतिर्मय प्रकाशपुञ्ज से यह चौक भरा पड़ा है। ऊपर स्थित चँदवा ने नीचे की उतनी ही जगह को ढँका है या उतनी ही जगह में छाया डाली है, जितनी जगह में गलीचा बिछा हुआ है ।।१९।।

चँदवे में वृक्ष तथा लताओं की नक्काशी के कईयों प्रकार के फलों-फूलों, पत्तों आदि की बेल-बूटियाँ तथा चित्रादि चित्रित हैं। चँदवे में चित्रित चित्रकारी में युक्तियुक्त जड़े हुए जवेरों, रत्नों तथा मणियों की बुटियाँ अत्यंत सुन्दर तथा सुहावनी दिखाई देती हैं ।।२०।।

इन चौक बिछाई गिलम,
तिन पर सिंहासन ।
चारों तरफों झलकत,
जोत लेहेरी उठत किरन ॥२१॥

झलकत सुंदर गिलम,
अति शोभित सिंहासन ।
यों जोत जमी जवेरन की,
बीच जुगल जोत रोसन ॥२२॥

लाल तकिए उपर सोभित,
धरे बराबर एक दोर ।
नरमों में अति नरम हैं,
पसम भरे अति जोर ॥२३॥

जेता एक कठेडा,
सबमें सुंदर तकिए ।
तिन तकियों साथ भराएके,
बैठे एक दिली ले ॥२४॥

इस चौक में पशमी (मुलायम) गलीचा बिछा हुआ है। इस गलीचे पर बीच के भाग में सुन्दर सिंहासन शोभायमान है। सिंहासन से उठने वाली ज्योतिर्मय किरणें चौक के अंदर चारों ओर झिलमिला रहीं हैं ।।२१।।

चौक के अंदर जमीन पर बिछी हुई मुलायम तथा सुंदर गिलम (गलीचा) झलझलाकार रूपेण झिलमिला रही है। चौक के अंदर बीछे गलीचे के मध्य में अत्यंत शोभनीय रूप से सिंहासन विराजमान है। दसों दिशा के विभिन्न जवाहरातों तथा रत्नों आदि का मिश्रित प्रकाशपुञ्ज चौक में जगमग[2] कर रहा है। इस ज्योतिर्मय पुञ्ज के बीच में स्थित सिंहासन पर श्री युगलस्वरूप आसीन हैं ।।२२।।

गलीचे के ऊपर लाल रंग के तकिये धरे हैं। ये तकिये किनार के थंभ और कठेड़े सदृश गोलावृत एक समान पंक्तिबद्ध शोभायमान हैं। ये तकिये नरमातिनरम हैं तथा सबमें मुलायम रूई भरी हुई है ।।२३।।

एक दिशा के दरवाजे से लेकर दूसरे दिशा के दरवाजे तक जितने कठेड़े हैं, उन सभी कठेड़ों के सामने सुंदर तकिये धरे हैं। उन तकियों से लगकर गोलावृत तीन पंक्तिबद्ध द्वादश सहस्र सखियाँ एकदिली (दिल में एक ही इच्छा लेकर) होकर चौक में भरकर बैठीं हैं ।।२४।।

जिन विध बैठियां बीचमें,
याही विध गृदवाए ।
तरफ चारों लग कठेडे,
बीच बैठा साथ भराए ॥२५॥

किरना उठें नई नई,
सिंहासन की जोत ।
कै तरंग इन जोत के,
नूर नंगों से होत ॥२६॥

पाइए इन तखत के,
उत्तम रंग कंचन ।
छे डांडे छे पायों पर,
अति सुंदर सिंहासन ॥२७॥

दस रंग डांडों देखत,
नए नए सोभित जे ।
हर तरफों रंग जुदे जुदे,
दसों दिस देखत ए ॥२८॥

जिस तरह बीच में भरकर बैठे हैं, उसी प्रकार से चारों ओर गिर्द में भी मिलकर बैठे हैं। जिन पंक्तियों में सखियाँ बैठीं हैं, उन पंक्तियों की बाहरी किनार में चारों ओर कठड़े लगे हैं और कठेड़े के अंदर बीच में सखियाँ मूल मिलावे के चौक में भरकर बैठीं हैं ॥२५॥

चौक के मध्य में स्थित ज्योतिर्मय सिंहासन के चारों ओर से निकलनेवाली नई-नई किरणें जहाँ एक ओर प्रकाश कर रही हैं, तो दूसरी ओर कईयों प्रकार के तेजोमय तरंग वाले रत्नमणियों की ज्योतें चौक में भरी हुई हैं ॥२६॥

इस सिंहासन के पाये अति उत्तम सुनहले कंचन रंग के शोभायमान हैं। सिंहासन में छः पाये हैं और इन छहों पायों पर छः डांडे युक्त सिंहासन अत्यंत सुंदर रूपेण शोभायमान हो रहा है ॥२७॥

सिंहासन के एक-एक डांडे में दस-दस प्रकार के रत्नों के रंग दृश्यमान हो रहे हैं। इनमें से एक रत्न-मणि से दूसरे रत्न-मणि का रंग नए-नए रूप में शोभा ले रहा है। दसों दिशाओं के भिन्न-भिन्न रंग हैं। एक दिशा के रंग से दूसरे दिशा के रंग में कोई मेलजोल नहीं है। अतः सभी दिशायें भिन्न-भिन्न रंग से शोभायमान हैं ॥२८॥

एक तरफ देखत एक रंग,
तरफ दूजी दूजा रंग ।
यों दसों दिस रंग देखत,
तिन रंग रंग कै तरंग ॥२९॥

तीन डांडे जो पीछले,
दो तकिए बीच तिन ।
कै रंग वृख बेली बूटियाँ,
ए कैसे होए बरनन ॥३०॥

चारों किनारें चढती,
दोरी वेली चढती चार ।
चारों तरफों फूल चढते,
करत अति झलकार ॥३१॥

तिन डांडों पर छत्रियां,
अति शोभित हैं दोए ।
माहें कै दोरी बेली कांगरी,
क्यों कहूं शोभा सोए ॥३२॥

एक दिशा में एक प्रकार के रंग से युक्त शोभा है, तो दूसरे दिशा में दूसरे प्रकार के रंग की सुंदरता हो रही है। इस प्रकार दसों दिशाओं में दस प्रकार के रंगों से युक्त प्रकाश की कईयों तरंगें शोभनीय रूप में प्रकाशित हो रहीं हैं ।।२९।।

सिंहासन के पीछे के जो तीन डांडे हैं, उन तीन डांडों के मध्य में दो तकिये शोभायमान हैं। इन तकियों में कईयों रंग के वृक्ष तथा लताओं के पंक्तिबद्ध बूटियों की शोभा-सुन्दरता का वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ? वह तो अवर्णनीय शोभा है ।।३०।।

चारों कोनों के किनारों में एक दिशा में चार डोरीदार बेल-बूटियों की उत्तरोत्तर शोभावर्धक नक्काशी है। चारों तरफ फल, फूल, पत्रों आदि की चित्रित चित्रकारी अधिकाधिक झलझलाकार रूपेण झिलमिला रही है ।।३१।।

उन छः डांडों के बीच में दो छत्रियाँ अति सुन्दर रूपेण शोभा ले रही हैं। इन छत्रियों के अंदर कईयों प्रकार की बेल, बूटियाँ तथा काँगरी बनी हुई हैं। इनकी शोभा सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ ? इनका वर्णन नहीं किया जा सकता ।।३२।।

दोए कलस दोए छत्रियों,
छे कलस ऊपर डांडन ।
आठों के अवकास में,
करत जंग रोसन ॥३३॥

नकस फूल कटाव कै,
कै तेज जोत जुगत ।
देख देख के देखिए,
नैना क्योंए न होए त्रपत ॥३४॥

चाकले दोऊ पसमी,
जोत जवेर नरम अपार ।
बैठे सुंदर सरूप दोऊ,
देख देख जाऊँ बलिहार ॥३५॥

जरे जिमी की रोसनी,
भराए रही आसमान ।
क्यों कहूं जोत तखत की,
जित बैठे बका सुभान ॥३६॥

दो कलश दो छत्रियों के ऊपर हैं और छः कलश छः डांडों पर हैं। इन आठों कलशों के ज्योतिर्मय प्रकाश अवसर पाकर परस्पर कलापूर्ण भाँति से जंग करते हैं तथा टकरा जाते हैं ।।३३।।

इन कलशों में कईयों प्रकार की कटावदार चित्रकारी बनी हुई है तथा विभिन्न प्रकार की फूलदार बूटियों की नकशकारी है। इनमें से निकलने वाले कईयों प्रकार के युक्तियुक्त तेज-जोत स्पष्ट रूपेण प्रकाशित हो रहे हैं। इस शोभा सुंदरता को जितना भी देखा जाय, उतना ही अधिक देखने की इच्छा होती है। कितना भी देखें, आँखें तृप्त ही नहीं होती ।।३४।।

सिंहासन पर बिछी हुई गादी पर दो पशमी (मुलायम) चाकले बिछे हुए हैं। इन चाकलों पर नरम जवेरों की बूटियाँ भरी हुईं हैं। उन रत्न-मणियों से अपार ज्योत निकल रही है। उस पर विराजमान श्री युगलस्वरूप का बारंबार दर्शन कर मैं उन युगल चरणों में समर्पित होता हूँ ।।३५।।

जमीन पर स्थित रज कणों-रेतियों के प्रकाश से आकाश भर गया है, तो अक्षरातीत परमात्मा-श्रीराजजी जिस सिंहासन पर विराजमान हैं, उस सिंहासन की ज्योत-प्रकाश का वर्णन किस प्रकार-कैसे करूँ ? ।।३६।।

बरनन करूं मैं इन जुबां,
रंग नंग इतके नाम ।
ए शब्दातीत पोहोंचे नहीं,
पर कहे बिना न भागे हाम ॥३७॥

ए जवेर कै भांत के,
सोभित भांत रूप कै ।
सो पल पल रूप प्रकासहीं,
यों सकल जोत एक मै ॥३८॥

गिलम जोत फूल बेलियां,
जोत ऊपर की आवे उतर ।
जोतें जोत सब मिल रही,
ए रंग जुदे कहूं क्यों कर ॥३९॥

ए मूल मिलावा अपना,
नजर दीजे इत ।
पलक न पीछे फेरिए,
ज्यों इसक अंग उपजत ॥४०॥

मैंने इस जबान-जिह्वा से जो वर्णन किया, उक्त प्रकार से रंग और रत्न-मणियों का नाम बताया, वे रंग तथा नग आदि सभी सामग्रियाँ शब्दातीत भूमिका की हैं। अतः हमारे इस जबान से निकले हुए शब्द वहाँ नहीं पहुँच सकते, यह जानते हुए भी मैंने अपनी आत्मा की इच्छापूर्ति के लिए यह वर्णन किया है ।।३७।।

ये विभिन्न जवाहरात, रत्नमणियाँ कईयों रूप से शोभायमान हो रहे हैं। ये क्षण-क्षण में नये-नये रूप में प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार विभिन्न तेज, जोत, प्रकाश का एक ज्योतिर्मय पुञ्ज सर्व ओर व्यापक हो रहा है ।।३८।।

नीचे बिछी हुई गिलम (गलीचे) में बनी फूल तथा बेलियों की बूटीदार ज्योति में ऊपर स्थित चँदवा तथा झालरादि की ज्योति पड़ रही है। यहाँ चारों ओर दसों दिशाओं में अनेकों ज्योतियों के एकत्रित होने के कारण एक ज्योतिर्मय अद्वैत पुञ्जाकार बन गया है। अब इनमें विद्यमान भिन्न-भिन्न रंगों का वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ ? ।।३९।।

हे सुन्दरसाथजी! यह अपना मूल मिलावा है। यहाँ निसदिन प्रतिक्षण तुम आत्मीय दृष्टि लगाये रहो। इसे सदा अपने नजरों के सामने रखो। पीछे (संसार में) न मुड़ो और न देखो, जिससे अपने अंग प्रत्यंग में मूल मिलावे के प्रति प्रेम उत्पन्न होता जाए ।।४०।।

जो मूल स्वरूप हैं अपने,
जाको कहिए पर आतम ।
सो पर आतम लेयके,
विलसिए संग खसम ॥४१॥

महामत कहे ऐ मोमिनों,
करुं मूल स्वरूप बरनन ।
मेहेर करी मासूकने,
लीजो रूह के अन्तसकरन ॥४२॥

जो अपनी आत्मा के मूल स्वरूप हैं, जिन्हें हम पर-आत्मा, परात्मा स्वरूप कहते हैं, उन परात्म स्वरूप को अपनी आत्मा में लेकर, अपनी आत्मा के मालिक-परमात्मा के साथ हमेशा विलास करते रहो ।।४१।।

महामति श्री प्राणनाथ जी स्वरूप कहते हैं कि हे मूल मिलावे में बैठी आत्माओं! मूल स्वरूप के इस वर्णन को आत्मा में धारण कर विलास करो। श्री अक्षरातीत आत्माधार श्री राजजी द्वारा हम पर की हुई दया को समझ कर, जानो तथा अपनी-अपनी आत्मा के अन्तःकरण में दृढ़ रूप से धारण कर लो ।।४२।।

-प्रणाम्-

❊ मेहेर सागर ❊

और सागर जो मेहेर का,
सो सोभा अति लेत ।
लेहेरें आवे मेहेर सागर,
खूबी सुख समेत ॥१॥

हुकम मेहेर के हाथमें,
जोस मेहेर के अंग ।
इसक आवे मेहेर से,
बेसक इलम तिन संग ॥२॥

पूरी मेहेर जित हक की,
तित और कहा चाहियत ।
हक मेहेर तित होत है,
जित असल है निसबत ॥३॥

मेहेर होत अब्बल से,
इतहीं होत हुकम ।
जलुस साथ सब तिनके,
कछू कमी न करत खसम ॥४॥

❊ भावार्थ ❊

अन्य सात सागरों में से यह जो आठवाँ कृपारूपी-दया का सागर है, उसने विभिन्न प्रकार की शोभा धारण कर रखी है। दया के इस सागर में विभिन्न लहरें उठ रहीं हैं। ये दयायुक्त लहरें अत्यंत शोभायुक्त सुखदायी हैं ।।१।।

आज्ञा दया के हाथ में है। शक्ति (जोश) भी दया का ही अंगरूप है। दया बिना प्रेम भी नहीं आता। शंका रहित निःशंक ज्ञान-इलम भी मात्र दया द्वारा ही प्राप्त होता है ।।२।।

जहाँ परमात्मा-श्री राजजी की पूर्ण दया होती है, वहाँ अन्य किस चीज की जरूरत पड़ती है ? श्री राजजी की दया वहीं होगी, जहाँ असल-मूल का संबंध होगा ।।३।।

जो आद्य (मूल) से ही दया के पात्र हैं, वहीं पर धनी श्री राजजी की आज्ञा भी होती है और आज्ञा के साथ ही साथ उसके पीछे जुलूस, भीड़ भी लगती है। तब वहाँ वे प्रियतम परमात्मा किसी प्रकार की कमी नहीं आने देते ।।४।।

ए खेल हुआ मेहेर वास्ते,
माहें खेलाए सब मेहेर ।
जाथें मेहेर जुदी हुई,
तब होत सब जेहेर ॥५॥

दोऊ मेहेर देखत खेल में,
लोक देखे ऊपर का जहूर ।
जाए अन्दर मेहेर कछू नहीं,
आखर होत हक से दूर ॥६॥

मेहेर सोई जो बातूनी,
जो मेहेर बाहेर और माहिं ।
आखर लग तरफ धनीकी,
कमी कछुए आवत नाहिं ॥७॥

मेहेर होत है जिन पर,
मेहेर देखत पांचों तत्व ।
पिंड ब्रह्मांड सब मेहेर के,
मेहेर के बीच बसत ॥८॥

हे आत्माओं! सुनो!! दया के हेतु ही इस सृष्टि रूपी खेल की रचना हुई। दयारूपी खेल के बीच में हमारे धनी की दया ही खेल खिला भी रही है। यदि इस खेल में हम पर धनी की दया न हो तो, तुरंत ही यह खेल हमें विषतुल्य लगने लगेगा ।।५।।

खेल के बीच में धनी-श्री राजजी की दो प्रकार की दया दिखाई देती है, जिसमें से लौकिक दृष्टि से बहिरंग प्रकाश (दया) देखा जाता है और लोग उसी को चाहते भी हैं। परंतु जिस पर अंतरंग-आत्मीय वास्तविक दया नहीं होती, तब वह अंत में परमात्मा-श्री राजजी के चरण से भी दूर हो जाता है ।।६।।

अंतरंग-आत्मीय दया वही है, जिसके कारण अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही प्रकाशमान हो जाये। जिस पर यह दोनों ही दया हो जाये, वह जब तक यहाँ संसार में रहेगा, तब तक सुखी-यशस्वी रहेगा तथा अंत में परमात्मा-श्री राजजी के चरण में पहुँच जायेगा। ये दोनों दया प्राप्त की हुई आत्मा के दोनों ही लोकों में कोई कमी नहीं आयेगी ।।७।।

जिस आत्मा को परमात्मा की दया प्राप्त होती है, वह पाँचों तत्त्वों में उन्हीं की दया देखती है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड, शरीर-संसार में दृष्टिगोचर होने वाले यावत् पदार्थों में उन्हीं की दया देखती है। वह आत्मा अपने आप को दया के बीच बैठा हुआ पाती है ।।८।।

ए दुख रूपी इन जिमी में,
दुख न काहूं देखत ।
बात बडी है मेहेर की,
जो दुख में सुख लेवत ॥९॥

सुख में तो सुख दायम,
पर स्वाद न आवत ऊपर ।
दुख आए सुख आवत,
सो मेहेर खोलत नजर ॥१०॥

इन दुख की जिमी में बैठके,
मेहेरें देखे दुख दूर ।
कायम सुख जो हक के,
सो मेहेर करत हजूर ॥११॥

मैं देख्या दिल विचार के,
इसक हक का जित ।
इसक मेहेर से आइया,
अव्वल मेहेर है तित ॥१२॥

इस दुःखदायी संसार के कोने-कोने में भी उसे दुःख नहीं दिखाई देता। श्री राजजी का दया विषयक रहस्य अत्यंत गहनशील है। इस गहनता का अनुभव वही आत्मा कर सकती है, जो दुःख में भी सुखानुभव कर रही हो ।।९।।

सुख में तो निरन्तर अखण्ड सुख प्राप्त हुआ ही करता था, लेकिन तब उस सुख का स्वाद नहीं आया। दुःख का स्वाद आने के बाद, तो उस सुख का स्वाद अवश्य ही प्राप्त होगा। इसी कारण तो इस बार श्री राजजी की दया ने हमारी आँखें खोल दीं ।।१०।।

इस दुःखदायी संसार रूपी खेल में बैठे-बैठे श्री राजजी की दया से ही दुःख दूर हो गये। अब दुःख उसे छू भी नहीं सकेगा। श्री राजजी के सन्निकट होते हुए जो निरन्तर अखण्ड सुख प्राप्त हुआ करता था, वह भी श्री राजजी की दया से नजदीक से भी नजदीक लगता है ।।११।।

मैंने अपने दिल में विचार करके देखा कि जहाँ श्री राजजी का प्रेम प्रगट है, वह प्रेम भी उन्हीं की दया से ही प्राप्त-प्रगट होता है अर्थात् प्रेम प्रगट होने से पहले ही उस पर दया-दृष्टि प्रगट हो जायेगी ।।१२।।

अपना इलम जिन देत हैं,
सो भी मेहेर से बेसक ।
मेहेर सब विध ल्यावत,
जित हुकम मेहेर जोस हक ॥१३॥

जाको लेत हैं मेहेर में,
ताए पेहेले मेहेरें बनावे वजूद ।
गुन अंग इंद्री मेहेर की,
रूह मेहेर फूकत माहें बूंद ॥१४॥

मेहेर सिंहासन बैठक,
और मेहेर चंवर सिर छत्र ।
सोहोबत सैन्या मेहेर की,
दिल चाहे मेहेर बाजंत्र ॥१५॥

बोली बोलावे मेहेर की,
और मेहेरै का चलन ।
रात दिन दोऊ मेहेर में,
होए मेहेरें मिलावा रूहन ॥१६॥

श्री राजजी अपना इलम-ज्ञान जिसे भी देते हैं, वह भी उसे निःशंक दया से ही प्राप्त होता है। श्री राजजी की दया द्वारा ही सब कुछ प्राप्त होता है। जहाँ दया होती है, वहाँ श्री राजजी की आज्ञा, जोश (शक्ति) की बरसात होती है ।।१३।।

जिसे वे अपनी दयारूपी छत्र-छाया में लेना चाहते हैं, उसका शरीर पहले जन्म से ही दयायुक्त बना देते हैं। उसके शरीर के गुण, अंग, इन्द्रियाँ भी दया से प्राप्त होते हैं। उसमें शुरूवात से लेकर अंत तक चेतन-आत्मा भी दया द्वारा ही प्रवेश होती है ।।१४।।

श्री राजजी की दया से ही सिंहासन, कुर्सी आसनादि बैठक मिलते हैं। दया के कारण ही सिर पर छत्री सुशोभित होती है और आस-पास लोग चँवर डुलाते हैं। साथ ही आगे-पीछे दया के सैनिक चला करते हैं तथा दिनानुकूल साज-सज्जा के साथ गाजे-बाजे भी दया से ही बजते हैं ।।१५।।

विभिन्न प्रकार की बोलियाँ, शब्दादि दया द्वारा ही बोलते हैं। अनेकों प्रकार के चलन-व्यवहार भी दया का ही प्रतिफल हैं। उन्हीं परमात्मा की दया से ही दिन और रात हुआ करते हैं। आत्माओं का मिलन भी दया से ही होता है ।।१६।।

बंदगी जिकर मेहेर की,
ए मेहेर हक हुकम ।
रूहें बैठी मेहेर छाया मिने,
पिएं मेहेर रस इसक इलम ॥१७॥

जित मेहेर तित सब हैं,
मेहेर अव्वल लग आखर ।
सोहोबत मेहेर देवहीं,
कहूं मेहेर सिफत क्यों कर ॥१८॥

एह जो दरिया मेहेर का,
बातून जाहेर देखत ।
सब सुख देखत तहां,
मेहेर जित बसत ॥१९॥

बीच नाबूद दुनीय के,
आई मेहेर हक खिलवत ।
तिन से सब कायम हुए,
मेहेरै की बरकत ॥२०॥

भजन-भक्ति, प्रार्थना भी दया बिना नहीं होती। उन श्री राजजी की दया-आज्ञा द्वारा ही सब कुछ होता है। ये आत्मायें दया के द्वारा ही दयारूपी छत्र-छाया के नीचे बैठीं हैं तथा दया से ही निःशंक ज्ञानयुक्त प्रेमरूपी रस पी रही हैं ॥१७॥

जहाँ श्री राजजी की दया होती है, वहाँ सब संपन्न रहते हैं। शुरू से लेकर अंत तक, आदि से लेकर अंत तक दया की कमी नहीं होती। दया द्वारा ही संग-संबंध की प्राप्ति होती है। यसर्थ मैं इस दया की बड़ाई तथा महत्त्वरूपी गहनता का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ॥१८॥

यह जो दयारूपी सागर का विस्तार है, यह दया भीतरी तथा बाहरी दोनों रूपों में दिखाई देती है। दयावंत दयालु परमात्मा श्री राजजी जहाँ विराजमान होते हैं, वहाँ सम्पूर्ण दया दिखाई देती है ॥१९॥

तीनों कालों में अस्तित्त्वहीन शून्य नाशवंत दुनिया के बीच ब्रह्मधाम से परमात्मा की दया आयी तथा उस दया ने संपूर्ण सृष्टि को अजर-अमर बना दिया, सब कुछ अखण्ड हो गया। यह श्री राजजी के दया की ताकत है ॥२०॥

बरनन करूं क्यों मेहेर की,
सिफत ना पोहोंचत ।
ए मेहेर हककी बातूनी,
नजर माहें बसत ॥२१॥

ए मेहेर करत सब जाहेर,
सबका मता तौलत ।
जो किन कानों ना सुन्या,
सो मेहेर मगज खोलत ॥२२॥

बरनन करुं क्यों मेहेर की,
जो बसत हक के दिल ।
जाको दिल में लेत हैं,
तहां आवत न्यामत सब मिल ॥२३॥

बरनन करूं क्यों मेहेर की,
जो बसत है माहें हक ।
जाको निवाजें मेहेर में,
ताए देत आप माफक ॥२४॥

श्री राजजी की दया के वास्तविक महत्त्व का वर्णन कैसे करूँ ? महत्त्वों के वर्णन के लिए शब्द ही नहीं पहुँच पा रहे हैं अर्थात् शब्दों का अभाव हो गया है, तो सिफत-प्रशंसा कैसे करूँ ? श्री राजजी की बातूनी-वास्तविक दया की गहनता आँखों के अंदर ही रह जाती है, वर्णित नहीं हो पाती ।।२१।।

उनकी दया से ही सब कुछ जाहिर-प्रगट कर रहा हूँ। सबको आत्मीय धन की गहनता भी दिखायी। जो कभी किसी के कानों से नहीं सुना गया, उसके भी गुह्य भेदों को खोलकर दया ने ही प्रगट कर दिया ।।२२।।

उस दया का वर्णन कैसे करूँ, जो श्री राजजी के दिल में बसी हुई है। वे जिसे अपने दिल में लेना चाहते हैं, उसे वे सभी प्रकार के पारलौकिक धन प्राप्त कराते हैं ।।२३।।

उस दया का विवरण कैसे बताऊँ, जो श्री राजजी के दिल के अंदर बस रही है। श्री राजजी जिसका जीवन अपनी दया की छत्र छाया में गुजर कराना चाहते हैं, उसे ही दया का पात्र बनाकर अपने समान बना देते हैं ।।२४।।

बात बडी है मेहेर की,
जित मेहेर तित सब ।
निमेष ना छोडें नजर से,
इन ऊपर कहा कहूं अब ॥२५॥

जहां आप तहां नजर,
जहां नजर तहां मेहेर ।
मेहेर बिना और जो कछू,
सो सब लगे जेहेर ॥२६॥

बात बडी है मेहेर की,
मेहेर होए ना बिना अंकुर ।
अंकुर सोई हक निसबती,
माहें बसत तजल्ला नूर ॥२७॥

ज्यों मेहेर त्यों जोस है,
ज्यों जोस त्यों हुकम ।
मेहेर रेहेत नूर बल लिए,
तहां हक इसक इलम ॥२८॥

दया का महात्म्य गहनातिगहन है। जहाँ दया है, वहाँ सब कुछ है। नजर से निमेष मात्र के लिए भी जो दूर नहीं होते, उन दयावंत की दया के विषय में मैं क्या कहूँ? ।।२५।।

जहाँ वे स्वयं रहते हैं, वहीं उनकी नजर भी रहती है और जहाँ उनकी नजर रहती है, वहीं पर दया होती है। उनकी दया के बिना, जो कुछ भी है सब विष तुल्य लगता है ।।२६।।

दया के विषय की बातें विशाल हैं। उसका वर्णन अतिविस्तृत है। अंकुर के बिना दया होती ही नहीं। अंकुर द्वारा ही श्री राजजी के साथ के संबंध का ज्ञान होता है। उनसे संबंधित जितनी भी आत्मायें हैं, वे तो अक्षरातीत धाम के अंदर अवश्य बैठेंगीं और बैठीं भी हैं ।।२७।।

उनकी दया का महत्त्व जैसा है, वैसी ही उनकी शक्ति-जोश की गहनता है। जैसी उनके जोश की गहनता है, वैसा ही उनकी आज्ञा (हुकम) का महात्म्य है। नूर (तारतम) के शक्तियुक्त रहने का कारण भी दया ही है। श्री राजजी का ज्ञान और प्रेम दोनों उसी के द्वारा निर्धारित है ।।२८।।

मीठा सुख मेहेर सागर,
मेहेर में हक आराम ।
मेहेर इसक हक अंग है,
मेहेर इसक प्रेम काम ॥२९॥

काम बडे इन मेहेर के,
ए मेहेर इन हक ।
मेहेर होत जिन ऊपर,
ताए देत आप माफक ॥३०॥

मेहेरें खेल बनाइया,
वास्ते मेहेर मोमन ।
मेहेरें मिलावा हुआ,
और मेहेर फिरस्तन ॥३१॥

मेहेरें रसूल होए आइया,
मेहेरें हक लिए फुरमान ।
कुंजी ल्याए मेहेर की,
करी मेहेरें हक पेहेचान ॥३२॥

दया का सागर स्वादिष्ट सुख पूर्ण है। श्री राजजी की दया में ही आराम, सुख-शान्ति है। दया और प्रेम ये दोनों ही श्री राजजी के अंग हैं। इशक-प्रेम और इच्छा ये सब संभवतः उनकी ही दया द्वारा हुआ करते हैं ।।२९।।

दया के ये गहनशील कार्य अतिविशाल हैं। ये सब उन्हीं की दया है। जिनके ऊपर या जिनके प्रति उनकी दया होती है, उसे वे अपने समान शक्तिशाली-यशस्वी बना देते हैं ।।३०।।

दया के कारण ही सृष्टिरूपी इस खेल की रचना करायी गयी। यह दया ब्रह्मात्माओं के लिए हुई। दया के कारण ही 'मूल-मिलावा' की बैठक हुई और दया के कारण ही ईश्वरी आत्माओं और कार्य ब्रह्म की उत्पत्ति हुई है ।।३१।।

दया के ही कारण श्री राजजी रसूल स्वरूप में होकर आए। श्री धाम का संदेश रूपी ग्रंथ कुरान भी दया के कारण ही यहाँ लाया गया। दया के कारण ही उन्होंने तारतम रूपी कुञ्जी प्रगट की। जिसने भी श्री राजजी को यथातथ्य रूप से जाना, वे उन्हें दया के कारण ही जान सके ।।३२।।

दै मेहेरें कुंजी इमाम को,
तीनों महंमद सूरत ।
मेहेरें दई हिकमत,
करी मेहेरें जाहेर हकीकत ॥३ ३॥

सो फुरमान मेहेरें खोलिया,
करी जाहेर मेहेरें आखरत ।
मेहेरें समझे मोमन,
करी मेहेरें जाहेर खिलवत ॥३ ४॥

ए मेहेर मोमिनों पर,
एही खासल खास उमत ।
दई मेहेरें भिस्त सबन को,
सो मेहेर मोमिनों बरकत ॥३ ५॥

मेहेरें खेल देख्या मोमिनों,
मेहेरें आए तलें कदम ।
मेहेरें क्यामत करके,
मेहेरें हंसके मिले खसम ॥३ ६॥

इमाम स्वरूप ने तारतम रूपी कुंजी का इख्तियार-जिम्मेदारी भी दया के कारण ही दिया। श्री श्यामाजी की तीन सुरतायें-स्वरूप में होकर दया के कारण ही आई। दया के कारण ही तीनों सुरताओं को कार्यानुसार शक्ति भी प्राप्त हुई और सम्पूर्ण गुह्यभेद भी दया के कारण ही जाहिर हुए ।।३३।।

दया द्वारा ही फुरमान-कुरान को खोला और आखर के भिस्त-मुक्तिस्थान जाहिर किये। दया के कारण ही सर्वप्रथम ब्रह्मात्मायें गुह्यातिगुह्य भेदों को समझ सकीं। दया के कारण ही नश्वर संसार के बीच अविनाशी अक्षर-अक्षरातीत घर प्रगट किया ।।३४।।

यह दया ब्रह्मसृष्टियों के प्रति-ऊपर ही हुई। ब्रह्मसृष्टियों की जमात ही उत्तमातिउत्तम जमात है। इसी जमात ने अन्य सभी ब्रह्मात्माओं के ऊपर दया कर उन्हें अविनाशी मुक्तिस्थान प्रदान किया। यह दया ब्रह्मसृष्टियों के जमात ने अपनी शक्ति द्वारा सर्वात्माओं को प्रदान की ।।३५।।

ब्रह्मात्माओं ने दया के कारण ही खेल देखा। दया के कारण ही उन्होंने श्री राजजी के चरण-शरण में आकर विश्राम किया। खेल में दया प्राप्त करके, आत्मा जागृत कर हँसते-हँसते उमंग के साथ प्रियतम धनी से मिले। यह भी दया द्वारा ही हुआ ।।३६।।

मेहेर की बातें तो कहूं,
जो मेहेर को होवे पार ।
मेहेरें हक न्यामत सब मापी,
मेहेरें मेहेर को नाहीं सुमार ।। ३ ७।।

जो मेहेर ठाढी रहे,
तो मेहेर मापी जाए ।
मेहेर पल में बढे कोट गुनी,
सो क्यों मेहेरें मेहेर मपाए ।। ३ ८।।

मेहेरें दिल अरस किया,
दिल मोमिन मेहेर सागर ।
हक मेहेर ले बैठे दिल में,
देखो मोमिनों मेहेर कादर ।। ३ ९।।

बात बडी है मेहेर की,
हक के दिल का प्यार ।
सो जाने दिल हक का,
या मेहेर जाने मेहेर को सुमार ।। ४ ०।।

दया के गहनशील महत्त्व तो तब बताऊँ, जब दया का पार पा सकूँ। जो अपार है, उसका वर्णन कर कैसे पार पाया जा सकता है ? श्री राजजी की दया से ही आदि-अंत के सभी धन एक-एक कर, नाप-तौल कर उसकी गहनता बतायी। दया का दया से ही पार नहीं पाया जा सका। यसर्थ दया बेशुमार रूप में ही रह गई ।।३७।।

श्री राजजी की दया सीमित रहने पर भी, स्थिर रहने पर भी उसकी गहनता की तुलना नहीं की जा सकती, परंतु उनकी दया तो सीमोल्लंघन कर पल-पल, क्षण-क्षण में करोड़ों गुना उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। ऐसी वृद्धिवर्धक गुणयुक्त दया की तुलना अन्य किस दया से की जा सकती है? ।।३८।।

दया ने ही दिल को धाम बनाया। ब्रह्मसृष्टि के दिल में दया का सागर बन गया। श्री राजजी दया के कारण उनके दिल में विराजमान हो गये। हे ब्रह्मात्माओं! देखो...देखो...!! श्री राजजी की दया ।।३९।।

श्री राजजी की सागर रूपी दया की गहनता अपार रूप से विशाल है। यह दया अपार क्यों न हो? यह अपार स्वरूप श्री राजजी के दिल में उत्पन्न प्रेमस्वरूप दया है। इस दया को तो श्री राजजी का दिल ही जानता है। इस दया का पार-शुमार तो उन धनी के दिल में उत्पन्न दया ही जान सकती है। इसकी गणना भी वही पा सकती है, जो इसका नाप-तौल करती है ।।४०।।

जो एक वचन कहूं मेहेर का,
ले मेहेर समझियो सोए ।
अपार उमर अपार जुबांए,
तो मेहेर को हिसाब न होए ॥४१॥

निपट सागर बडा आठमा,
ए मेहेर को निके जान ।
जो मेहेर होए तुझ ऊपर,
तो मेहेर की होए पेहेचान ॥४२॥

सात सागर बरनन किए,
सागर आठमा बिना हिसाब ।
ए मेहेर को पार न आवहीं,
जो कै कोट करुं किताब ॥४३॥

ए मेहेर मोमिन जानहीं,
जिन ऊपर है मेहेर ।
ताको हक की मेहेर बिना,
और देखें सब जेहेर ॥४४॥

इस दया विषयक अनन्त वचनों में से इतने ही वचन लेकर, उस वचन की गहनता-महत्त्व वहाँ की दया द्वारा समझने-समझाने लगें, तो उनमें से एक वचन का महत्त्व-वर्णन करने में इस जीवन की अनगिनत उम्र और अनंत जबान (जिह्वा) पार नहीं पा सकेगी। तो एक वचन का हिसाब भी नहीं किया जा सकता और न पार ही पाया जा सकता है ।।४१।।

यसर्थ यह आठवाँ-दया का सागर निश्चित रूप से अत्यंत गहन तथा विशाल है। इस दया को इस प्रकार अच्छी तरह से समझो! याद करो!! वहाँ की जितनी भी दया तुम लोगों पर होगी, तुम्हें उस दया की गरिमा का उतना ही अनुभव होता जाएगा ।।४२।।

इससे पूर्व जो सात सागर का वर्णन हुआ, उसके बाद जो यह आठवाँ सागर है, उसका पार ही नहीं है, वह अपार है। इस दया का किसी भी प्रकार से पार नहीं पाया जा सकता, जब कि वर्णन करते-करते कई करोड़ों किताबों का ढेर लग जाएगा ।।४३।।

इस दया का महत्त्व तथा गहनता का अनुभव ब्रह्मसृष्टि का दिल ही जानेगा तथा कर सकेगा। जिस पर श्री राजजी की दया है, उसके लिए तो उनकी दया के सिवाय त्रिकाल में सर्वत्र दसों दिशाओं में विष ही विष देखने में आएगा ।।४४।।

महामत कहे ऐ मोमिनो,
ए मेहेर बडा सागर ।
सो मेहेर हक कदमों तलें,
पीओ अमीरस हक नजर ॥४५॥

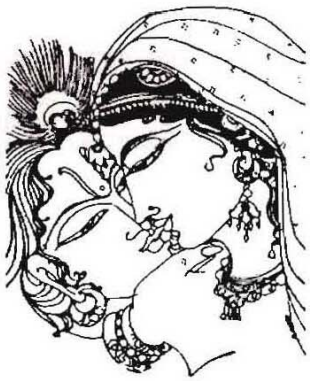

महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि हे ब्रह्मात्माओं, ब्रह्मसृष्टियों! यह दया का सागर अपार, अथाह विशाल है। अतः इसे समझो, जानो। तदुप्रान्त श्री राजजी के युगलचरण की शरण में रहकर, उनकी दयारूपी महत्त्व का अनुभव कर, आत्मा की नजर द्वारा ब्रह्मानंद रस का पान करो ।।४५।।

-प्रणाम-.

- ''पञ्चरोशनी'' -

❋ शुद्धि-पत्र ❋

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७	८	जीती	ज़ीति
५७	८	जित	जीत
९१	१८	प्लवादि	प्वालादि
९३	८	महिन	महीन
१४५	१२	दिनानुकूल	दिलानुकूल
१५५	१	स्वरूप ने	स्वरूप को
१५५	१०	ब्रह्मात्माओं	जीवात्माओं
१५५	११	के	की
१५९	१	इतने	एक

आह्वान

निसदिन रंग मोहोलन में, साथ स्यामाजी स्याम ।
याद करो सुख संबों अंगों, जो करते आठों जाम ।।

-(परिक्रमा, प्र.४/चौ.५)।

अर्थः- हे मेरे धामस्थ सुमन सुन्दरसाथजी !

हम सब अक्षरातीत ब्रह्मधाम-श्री रंगमहल में रात-दिन श्री श्यामश्यामाजी के साथ कैसे रहा करती थीं? अपने अपने अंग-प्रत्यंग से उन सुखों को याद करो जिन्हें हम आठों प्रहर-चौबीसों घंटों की लीलाओं द्वारा 'निरंतर प्राप्त' किया करती थीं ! इतना तो करो !!

-प्रणाम्

आर्त–पुकार

हे राज–हे कृष्ण ! हे धनी–हे पिया !! हे दुलहा !!!
दुलहा लीजे कण्ठ लगाय –
हे प्राणनाथ.....

तुम दुलहा मैं दुलहिन , और न जानूं बात।
इश्क सों सेवा करूं , सब अंगों साक्षात् !!

प्रणाम् –